सर्वहारा दृष्टिकोण

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) का मुखपत्र (पाक्षिक)

वर्ष-29 अंक-20 22 अक्तूबर से 5 नवम्बर, 2014 मुख्य संपादक - कॉमरेड कृष्ण चक्रवर्ती मूल्य : 2 रुपये

तत्काल रेल किराया बढ़ोतरी का एसयूसीआई (सी) ने किया विरोध

एसयूसीआई(सी) के महासचिव कॉमरेड प्रभाष घोष ने 5 अक्तूबर को जारी एक बयान में कहा :

गतिशील मूल्य निर्धारण के नाम पर 50 प्रतिशत तत्काल रेल टिकटों को उत्तरोतर महंगे दामों पर बेचने के रेल अथोरिटियों के नाजायज फैसले का हम कड़ा विरोध करते हैं। तत्काल रेल टिकटों के लिए पहले ही यात्रियों को सामान्य किराये से 30 प्रतिशत ज्यादा भुगतान करना पड़ता है। अब तत्काल कोटे की 50 प्रतिशत टिकटें बिकते ही बाकी टिकटों के दाम हर 10 प्रतिशत के बाद लगातार बढ़ते जाएंगे जिससे एक अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। यह दावा कि यात्री इन बढ़े हुए दामों को देने के इच्छुक हैं चूंकि वे दलालों से ब्लेक में तत्काल टिकट खरीदते हैं जो तत्काल की 50 प्रतिशत टिकट पहले ही हथिया लेते हैं, असल में गैंगस्टर का तर्क है क्योंकि तत्काल टिकट बुक कराने के लिए यात्रियों को बाकायदा अपना पहचान पत्र प्रदान करना पड़ता है। इसलिए इस मामले में टिकटधारी यात्री के नाम में हेराफेरी का सवाल ही नहीं उठता है। गत जून में रेल किरायों में 14.2 प्रतिशत की भारी बढ़ोतरी का तमाचा जड़ने के बाद पिछले दरवाजे से फिर यात्रियों को लूटने के सरकार के फैसले को छिपाने के अभिप्राय से यह ऊटपंटांग व्याख्या की गई है।

इस तथाकथित गतिशील मूल्य निर्धारण को तुरंत वापस लेने की मांग करते हैं और सरकार या तथाकथित रेल टैरिफ अथोरिटी की ओर से यात्रियों को लूटने की चालाकियों के खिलाफ एकजुट प्रतिवाद की आवाज बुलंद करने का लोगों से आह्वान करते हैं ताकि भविष्य में इस तरह की घटना न घटे।

पटना में मची भगदड़ में हुई मौत की घटना पर एसयूसीआई(सी) ने जतायी गहरी संवेदना

पटना में भगदड़ की वजह से 33 लोगों की मौत और अनेकों के जख्मी होने की घटना पर एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) बिहार राज्य कमिटी सचिव का शिव शंकर का बयान:

''दशहरे के मौके पर 3 अक्तूबर को पटना के गांधी मैदान में हुई भगदड़ की वजह से 33 लोगों, जिनमें अधिकांश बच्चे व महिलाएं हैं, की असमय मौत तथा अनेकों के जख्मी होने की घटना काफी दुखद और मर्माहत करने वाली है। हम अपनी गहरी संवेदना व हार्दिक शोक प्रकट करते हैं।

यह घटना सरकार तथा प्रशासन के मुजरिमाना निकम्मेपन और बदइंतजामी को साफ तौर पर दर्शाती है। सरकार और प्रशासन को पता था कि दशहरे के मौके पर गांधी मैदान में लाखों लोग जुटते हैं। लेकिन प्रशासन द्वारा लोगों की सुरक्षा का कोई इंतजाम नहीं किया गया। यह अत्यंत दुखद घटना साबित करती है कि सरकार और प्रशासन का जनता से सरोकार नहीं रह गया है।

हम मांग करते हैं कि घटना की निष्पक्ष जांच करवाकर जिम्मेवार पदाधिकारियों को दृष्टांतमूलक सजा दी जाय, मृतकों और घायलों को समुचित मुआवजा दिया जाय तथा घायलों का इलाज पूरी तरह से सरकारी खर्च पर किया जाये।''

महान नवम्बर क्रान्ति जिन्दाबाद

(हम सर्वहारा के महान नेता और इस युग के अन्यतम मार्क्सवादी दार्शनिक कॉ. शिवदास घोष के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं। यह भाषण उन्होंने 8 नवम्बर 1974 को नवम्बर क्रान्ति की 57वीं वर्षगाँठ पर हमारी पार्टी की प. बंगाल राज्य कमेटी द्वारा आयोजित जनसभा में दिया था। अनुवाद पार्टी के अंग्रेजी मुखपत्र 'प्रोलेटेरियन ऐरा' के 1 नवम्बर 1977 के विशेषांक से किया गया है। काफी सावधानी बरतने के बावजूद भी यदि अनुवाद में अभिव्यक्ति के कुछ खामियाँ रह जाएं तो उनके लिए सम्पादक ही पूरी तरह जिम्मेदार हैं।)

कॉमरेड्स, आप सभी जानते हैं कि हमारी पार्टी एस. यू.सी.आई. की पं. बंगाल राज्य कमेटी ने रूस की महान नवम्बर क्रान्ति की 57वीं वर्षगाँठ पर यह सभा आयोजित की है। आप लोगों ने सुना होगा और शायद जानते भी होंगे कि इस दिन 57 वर्ष पहले सन् 1917 में विश्व के इस एकमात्र देश में पहली समाजवादी क्रान्ति कामयाब हुई थी। बोल्शेविक पार्टी और उसके नेता कॉ. लेनिन के नेतृत्व में मजदूर किसान, सर्वहारा, वहाँ के बुर्जुआ वर्ग और उसके दल को सत्ता से उखाड़ फेंककर राजसत्ता पर कब्जा करने में सक्षम हुए थे। रूस की यह क्रान्ति जो बुर्जुआ वर्ग को राजसत्ता से उखाड़ फेंकते हुए 1917 में सम्पन्न हुई कई पहलुओं से तात्पर्यपूर्ण है।

वास्तव में इस क्रान्ति के पहले दुनिया के आम लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि भोले भाले मजदूर-किसान और निरक्षर मेहनतकश कभी शासक बुर्जुआ वर्ग या जारशाही जैसे अति निरंकुश राजतंत्र को सत्ता से उखाड़ भी पाएंगे। जार या जारशाही को सत्ता से उखाड़ फेंकने की 1917 की फरवरी क्रान्ति असल में रूस की बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति की सफलता को चिन्हित करती है। यद्यपि फरवरी क्रान्ति के जरिए जारशाही को उखाड़ फेंका गया, फिर भी राजसत्ता बुर्जुआ वर्ग के हाथों में चली गई जो जारशाही के खिलाफ संयुक्त मोर्चे में भागीदार था। निस्संदेह, फरवरी क्रान्ति के माध्यम से रूस में बुर्जुआ केरेंस्की सरकार की स्थापना हुई लेकिन मजदूर-किसानों की सोवियतें भी लगभग दोहरी सत्ता के रूप में उसके साथ-साथ विद्यमान थीं। रूस की फरवरी क्रान्ति न केवल सामंतवाद-साम्राज्यवाद को समाप्त करने में असफल रही बल्कि इसके विपरीत, वहाँ के शासक बुर्जुआ वर्ग ने प्रशासनिक ढाँचे में मौजूद सामन्तवादी और साम्राज्यवादी विरासत को बरकरार रखने और उसके साथ नजदीकी समझदारी कायम करने में गजब की दिलचस्पी दिखाई। फलस्वरूप, हालांकि फरवरी क्रान्ति के जरिए जारशाही को उखाड़ फेंककर बुर्जुआ वर्ग ने सत्ता दखल की, फिर भी, सामाजिक क्रान्ति के इस दौर का आर्थिक पहलू से विश्लेषण किया जाए तो हम पाएंगे कि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के सामंतवाद-विरोधी व साम्राज्यवाद-विरोधी कार्यक्रम अधूरे ही रह गए।

इसने रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन से जड़े हुए मार्क्सवादियों, यानी समाजवादी क्रान्तिकारियों, मेंशेविकों यहाँ तक कि कुछ बोल्शेविकों के बीच भी एक भ्रांत धारणा को जन्म दिया जिसके कारण इन लोगों ने मार्क्सवाद को वस्तुत: आर्थिक निश्चयतावाद (इकोनोमिक डिटरमिनिज़्म) में परिणत कर दिया। मार्क्सवादी सिद्धान्त की समझ के मुताबिक यानी मार्क्सवाद को कुछ हद तक जड़सूत्र (डोग्मा) की तरह अपनाए जाने के कारण, जिसका मार्क्सवादी विज्ञान की सही द्वन्द्वात्मक वस्तुवादी समझ से दूर का भी वास्ता नहीं है, उन्होंने कहना शुरू किया, चूँकि समाज की प्रगति और विकास की प्रक्रिया में सामाजिक क्रान्ति के चरणों को लांघा नहीं जा सकता, इसलिए बर्जुआ जनवादी क्रान्ति के सभी कार्यों को पूरा किए बिना, समाजवादी क्रान्ति के स्तर पर पहुँचना असंभव है। उनका कहना था कि ऐसी अवस्था में, बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के सामन्तवाद-विरोधी और साम्राज्यवाद-विरोधी कार्यक्रमों को पूरा करने के उद्देश्य से मजदूर-किसानों की सोवियतों को एक ओर केरेंस्की सरकार के साथ सहयोग करना चाहिए तथा दूसरी ओर इन कार्यक्रमों को लागू करवाने के लिए जन आन्दोलनों को संगठित करने के माध्यम से केरेंस्की सरकार पर दबाव डालते रहना चाहिए। अत: संसदीय राजनीति के रास्ते ही मजदूर-किसान और सर्वहारा को चलना होगा और इस प्रक्रिया को पहले बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति को पूरा करना होगा। जब तक बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के ये काम पूरे नहीं कर लिए जाते, समाजवादी क्रान्ति के लिए संघर्ष करना व्यर्थ है। फरवरी क्रान्ति के बाद रूस में यह धारणा अत्यन्त प्रबल थी।

मार्क्सवाद आर्थिक निश्चयतावाद नहीं है

लेकिन उस समय बोल्शेविक पार्टी का नेतृत्व सच्चे मार्क्सवादियों के हाथों में था। और लेनिन जैसे प्रतिभावान नेता उस नेतृत्व की बागडोर थामे हुए थे। वे उस किस्म के मार्क्सवादी नहीं थे जो अपने दावों को उचित ठहराने या विरोधियों को उल्लू साबित करने के लिए सुविधानुसार यहाँ वहाँ से संदर्भहीन कुछ पंक्तियाँ या उद्धरण पेश करने में विश्वास रखते हों। वे इस बात को बखूबी समझते थे कि मार्क्सवाद के पुरातन ग्रंथों में जो लिखा है वही मार्क्सवाद नहीं है। बल्कि मार्क्स, एंगेल्स या अन्य मार्क्सवादी तत्कालीन परिस्थितियों में जिस विज्ञान यानी जिस मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक पद्धति एवं दार्शनिक दृष्टिकोण को हथियार बनाकर उन सब निष्कर्षों पर पहुँचे थे, उस विज्ञान को आत्मसात करते हुए मौजूदा वस्तुपरक परिस्थितियों में इस्तेमाल कर पाने का मायने ही है मार्क्सवाद के मर्म को समझना। उद्धरण रटना, समान घटनाओं का बखान करना या समान ऐतिहासिक वृतांतों की दलील देना, इस सबका मार्क्सवाद से यानी मार्क्सवाद-सम्मत द्वंद्वात्मक विचार विश्लेषण पद्धति से कोई लेना देना नहीं है। यह सब मार्क्सवाद के नाम एवं मार्क्सवाद को विकृत करना है। लेनिन इसे बखूबी समझते थे। इसलिए उन्होंने अत्यंत साहस के साथ अपनी विख्यात रचना 'अप्रैल थीसिस' के माध्यम से मार्क्सवादियों के एक तबके में मार्क्सवाद के बारे में प्रचलित गलत धारणाओं के खिलाफ तीखा प्रहार किया। दुनियाभर के तमाम कम्युनिस्टों को उन्होंने साफ-साफ दिखाया कि मार्क्सवाद आर्थिक निश्चयतावाद नहीं है। इस पर लेनिन की एक अमूल्य सीख स्थापित हुई कि अर्थव्यवस्था और राजनीति के बीच हमेशा राजनीति को प्राथमिकता देनी होगी (पॉलिटिक्स आलवेज़ सुपरसीड्स इकोनोमी) पूँजीवाद के असमान विकास की वजह से, क्रान्तिकारी आन्दोलनों के उतार-चढ़ाव, टेढ़े-मेढ़े रास्ते से आगे बढ़ना, कभी आगे बढ़ना, कभी पीछे हटना –इन तमाम उहापोहों और खींचतान के बीच राजनीति और राजनीतिक घटनाएं, आर्थिक घटनाओं को इस कदर प्रभावित कर रही हैं कि वे ही वास्तव में निर्णायक भूमिका निभा रही हैं। राजनीति और अर्थव्यवस्था के बीच परस्पर संबंध को इस ढंग से समझने की बजाए अगर कोई यूं समझे कि आर्थिक परिस्थिति बदलते ही राजनैतिक स्थिति भी बदल जाती है यानी राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आर्थिक परिवर्तन का प्रतिबिम्ब मात्र है, तो उसके लिए यह मार्क्सवाद को समझने से इन्कार करना होगा और मार्क्सवाद के अलावा कुछ और समझ लेना होगा।

(शेष पृष्ठ 2 पर)

महान नवम्बर क्रान्ति ...

(पृष्ठ 2 का शेष)

राजसत्ता का वर्ग चरित्र निर्धारित करना ही क्रान्ति की राणनीति तय करने में बुनियादी सवाल है

इस विश्लेषण के आधार पर लेनिन ने दर्शाया कि निकोलाई जार के सत्ताच्युत होने के साथ रूस में बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति सम्पन्न हुई। राजनैतिक तौर पर फरवरी क्रान्ति के बाद निकोलाई जार के स्थान पर यानी पुराने वर्ग के स्थान पर नए रूसी बुर्जुआ वर्ग ने राजसत्ता दखल कर ली थी। हालांकि लेनिन जानते थे कि आर्थिक पहलू से रूस में तब तक बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के अनेक कार्य अधूरे पड़े थे। पूँजीवाद के अनुप्रवेश के बावजूद ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सामंतवाद अभी तक एक प्रबल शक्ति के रूप में मौजूद था। आर्थिक तौर पर साम्राज्यवाद और धनी पूँजीवादी देशों के वित्तीय गुटतंत्र (फाइनैन्शियल ऑलिगार्की) के प्रति दासता अभी भी काफी मात्रा में मौजूद थी। लेकिन यह जानते हुए भी लेनिन ने कहा था, 'चूँकि राजनैतिक तौर पर क्रान्ति का मूल प्रश्न राजसत्ता हथियाने के सवाल से जुड़ा हुआ है, अत: निकोलाई जार को सत्ताच्युत कर राजसत्ता जिस क्षण रूसी बुर्जुआ वर्ग के हाथों चली गई यानी एक पुराने वर्ग के स्थान पर नए वर्ग ने सत्ता दखल कर ली–उस हद तक और उस मायने में बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति सम्पन्न हो चुकी थी और रूस समाजवादी क्रान्ति के चरण में प्रवेश कर चुका था। अत: उन परिस्थितियों में बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति की रणनीति और रणकौशल की पुरानी अवधारणा के साथ चलने का मतलब होता बुर्जुआ वर्ग की दासता स्वीकारना, मजदूर-किसानों की शहादत को बुर्जुआ वर्ग के कदमों में डाल देना और क्रान्ति के प्रति भारी गद्दारी करना। इसलिए उन्होंने बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के पुराने नारे के स्थान पर समाजवादी क्रान्ति का नया नारा दिया और वर्ग-विन्यास (क्लास-अलायंस एण्ड क्लास अलाईमेण्ट ऑफ फोर्सेस) के क्षेत्र में नई अवधारणा प्रस्तुत की। 'अप्रैल थीसिस' में प्रस्तुत इस महत्वपूर्ण विश्लेषण से मार्क्सवादी आन्दोलन अभी तक अपरिचित था। इसलिए उस समय मार्क्सवादियों के बीच यह मुद्दा पर्याप्त विवाद की वस्तु बन गया।

बहरहाल इसके सारतत्व को साफ-साफ समझना होगा। हमारे देश में जो लोग अर्थ व्यवस्था में थोड़ा सा भी सामंतवाद ढूँढ़ पाने से क्रान्ति के स्तर को बुर्जुआ जनवादी या राष्ट्रीय जनवादी ठहराने लगते हैं और कहते हैं कि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के कामकाज पूरे किए बगैर, छलांग लगाकर, हम कैसे समाजवादी क्रान्ति के चरण में प्रवेश कर सकते हैं–नवम्बर क्रान्ति उन लोगों के लिए एक कीमती सबक छोड़ गई है। नवम्बर क्रान्ति के सबक को समझे बगैर जो लोग हमारे देश में आज भी द्वितीय इण्टरनेशनल के नेताओं की तर्ज पर या नवम्बर क्रान्ति के समय के मेंशेविकों, समाजवादी क्रान्तिकारियों और बोल्शेविकों के एक विभ्रांत तबके की तरह सोच-विचार रहे हैं (और बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति का राग अलापे जा रहे हैं–सं.), वे वास्तव में आर्थिक निश्चयतावाद का ही अभ्यास कर रहे हैं जो राजनीति व अर्थव्यवस्था के बीच द्वंद्वात्मक रिश्ते को ही नकारता है, जिसका मार्क्सवाद- लेनिनवाद और द्वंद्वात्मक वस्तुवाद से दूर का भी नाता नहीं है।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि रूसी क्रान्ति ऐसी परिस्थिति में हुई थी जब सामंतवाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर छाया हुआ था, साम्राज्यवाद का प्रभाव मजबूती से बरकरार था और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था साम्राज्यवाद की गिरफ्त से मुक्त नहीं हुई थी। इस सबके बावजूद लेनिन ने दिखाया कि बुर्जुआ केरेंस्की सरकार द्वारा सत्ता दखल कर देने के बाद, चूँकि मजदूर वर्ग को गरीब किसानों के साथ मिलकर बुर्जुआ वर्ग को सत्ता से उखाड़ कर सत्ता पर कब्जा करना था और चूँकि क्रान्ति का उद्देश्य सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करना था, उस हद तक और उस मायने में रूस की क्रान्ति राजनैतिक तौर पर समाजवादी क्रान्ति थी। लेकिन चूँकि आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के सामंतवाद-विरोधी और साम्राज्यवाद-विरोधी कार्यक्रम अपूर्ण पड़े हुए थे, उन्हें समाजवादी क्रान्ति की मूल राजनैतिक रणनीति के तहत व्युत्पादित कार्यों (डेरिवेटिव्स) के बतौर सम्मिलित करना जरूरी था।

बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के अधूरे कार्यों को सत्ता पर कब्जा कर लेने के बाद सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व के तहत पूरा करना होगा। अन्यथा किसानों को जमीन नहीं मिलेगी, कुलकों के प्रभुत्व का अंत नहीं होगा, न ही सामंतवाद को जड़ से नेस्तनाबूद किया जा सकेगा, न ही अर्थव्यवस्था के स्वतंत्र विकास की आधारशिला रखी जा सकेगी, न देश में अमन-चैन कायम किया जा सकेगा, न ही खाद्य-समस्या को हल कर पाना मुमकिन होगा। क्योंकि साम्राज्यवाद एवं सर्वहारा क्रान्ति के मौजूदा युग में यानी जब पूँजीवाद बुरी तरह प्रतिक्रियावादी हो चुका है, बुर्जुआ वर्ग द्वारा, पिछले युग के बुर्जुआ वर्ग की तरह बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के तमाम कामों को निबटाना संभव नहीं रह गया है। इसलिए, अगर किसान समुदाय को सामंती शोषण से पूरी तरह मुक्त करने का भी सवाल हो, तब भी सर्वहारा वर्ग का सत्ता पर कब्जा करना निहायत जरूरी होगा और समाजवादी क्रान्ति अपरिहार्य होगी। इसलिए हालांकि नवम्बर क्रान्ति या समाजवादी क्रान्ति का मूल रणनीतिक नारा और वर्ग विन्यास का आधार गरीब किसानों के साथ क्रान्तिकारी एकजुटता स्थापित करने का था, तो भी 1917 से 1919 तक सत्ता पर कब्जा जमाने के समय से रूस के क्रान्तिकारी सर्वहारा ने बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के बचे हुए कामों को पूरा करने के उद्देश्य से केवल मध्यम दर्जे के किसानों के साथ ही नहीं बल्कि समूचे कृषक वर्ग के साथ एका कायम करने की चेष्टा की। समाजवादी क्रान्ति का मूल नारा भले ही गरीब किसान वर्ग के साथ वर्ग-मैत्री कायम करने का रहा हो, लेकिन चूँकि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के अपूर्ण कार्य व्युत्पादित कार्यों की तरह अभी भी करने बाकी थे जिन्हें सत्ता दखल करने के बाद सर्वहारा वर्ग को पूरा करना था, मसलन सामन्तवाद का सम्पूर्ण खात्मा, जमीन का पुनर्वितरण, गरीब व मध्यम दर्जे के किसानों की चरम बदहाली को दूर करना और कदम-ब-कदम समाजवादी पुनर्निर्माण की ओर अग्रसर होना, उन्हें नवम्बर क्रान्ति के उपरान्त भी काफी समय तक के लिए समूचे कृषक वर्ग के साथ एकजुटता कायम करने का नारा देना जरूरी हो गया था।

मजदूर वर्ग के नेतृत्व के अभाव में मौजूदा युग में बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियाँ भी अपने तर्कसंगत लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकतीं

नवम्बर क्रान्ति की यह ठोस सीख हमारे लिए अपार महत्व रखती है। इसके बाद से दुनियाभर के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों पर मजदूर वर्ग का प्रभुत्व कायम करने का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो उठा। प्लेखानोव के खिलाफ संघर्ष करते हुए, लेनिन ने इस सोच को सैद्धांतिक आधार दिया। प्लेखानोव का सोचना था, चूँकि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति मूलत: बुर्जुआ क्रान्ति है, इसका नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग के पास ही रहना चाहिए और जबकि अब विश्व सर्वहारा क्रान्ति को केन्द्र कर सर्वहारा वर्ग का उदय भी हो चुका है, तब मजदूर वर्ग को भी इस नेतृत्व में हिस्सा बंटाना होगा। यानी प्लेखानोव संयुक्त नेतृत्व का नारा बुलन्द करते हैं। लेनिन ने प्लेखानोव के इस विचार का खण्डन करते हुए कहा, हरगिज नहीं, या तो इन क्रान्तियों पर सर्वहारा वर्ग का प्रभुत्व कायम होगा या फिर बुर्जुआ वर्ग का। अगर बुर्जुआ वर्ग का प्रभुत्व कायम हुआ तो इसका मायने होगा क्रान्ति के प्रति गद्दारी और वह क्रान्ति अधकचरी ही समाप्त हो जाएगी। इसके विपरीत मजदूर वर्ग का प्रभुत्व कायम होने पर ये क्रान्तियाँ सफल गंतव्य की ओर ले जायी जा सकेंगी। सिद्धांत के द्वारा लेनिन ने प्रतिपादित किया कि (1) साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्ति के वर्तमान युग में, विभिन्न मुल्कों की बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियाँ भी दरअसल विश्व समाजवादी या सर्वहारा क्रान्ति का ही अंग बन गई हैं। (2) मरणासन्न पूँजीवाद के इस युग में जबकि विश्व पूँजीवाद साम्राज्यवाद के चरण में प्रवेश कर चुका है और घोर प्रतिक्रियावादी बन चुका है, विश्व के तमाम देशों में, उन औपनिवेशिक देशों में भी जहाँ राष्ट्रीय आजादी आन्दोलनों का दौर जारी है, बुर्जुआ वर्ग अपनी क्रान्तिकारिता गंवा चुका है, जो उसे 18वीं, 19वीं सदी में हासिल थी। क्योंकि इन तमाम देशों के बुर्जुआ वर्ग आज विश्व प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग का अभिन्न अंग हो चुका है।

इसलिए हालांकि साम्राज्यवाद-विरोधी स्वाधीनता संग्रामों में कई मुल्कों में ये राष्ट्रीय बुर्जुआ सक्रिय रहेंगे, वे क्रान्ति के भय से साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से सांठगांठ भी करते रहेंगे। नतीजतन, इनके जिम्मे स्वतंत्रता संग्रामों का नेतृत्व रहने से ये संग्राम या राष्ट्रीय जनवादी आन्दोलन कभी भी अपने निर्धारित लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाएंगें। राष्ट्रीय आजादी आन्दोलनों में बुर्जुआ वर्ग में यह जो ढुलमुलपन है यानी कभी साम्राज्यवाद के साथ सांठगांठ करना, कभी उससे लड़ना, कभी सामंतवाद-विरोधी नारे लगाना, कभी उसके साथ समझौता करना, इधर लड़ाई के मैदान में उतरना, उधर लुकछिप कर समझौते के लिए बातचीत चलाए रखना, कभी जनता के प्रगतिशील नारों का समर्थन कर उसके साथ बने रहना तो कभी सीधे-सीधे उसकी मुखालफत करना–उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग के अंश के नाते यह जो अस्थिरता है, जो दोमुंही नीति है, जब तक इसे परास्त कर मजदूर वर्ग अपना नेतृत्व कायम नहीं कर लेता, ये राष्ट्रीय आजादी आन्दोलन अपने वांछित लक्ष्य पर कभी नहीं पहुँच सकते। मजदूर वर्ग का नेतृत्व कायम हुए बिना पिछड़े मुल्कों में, बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में अगर स्वतंत्रता संग्राम सफल भी हो जाएं, तो भी बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियाँ या ये स्वतंत्रता संग्राम अधकचरे और अधपके ही समाप्त हो जाएंगे। स्वतंत्रता तो आएगी मगर स्वतंत्रता का मूल लक्ष्य हासिल नहीं होगा। न तो साम्राज्यवादी पूँजी के चंगुल से देश को पूरी तरह छुटकारा मिल पाएगा और न ही सामंतवाद का सम्पूर्ण खात्मा कर कृषि अर्थव्यवस्था का क्रान्तिकारी परिवर्तन ही संभव हो सकेगा। इसीलिए बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियों को सही अंजाम देने के लिए आज यह अपरिहार्य हो गया है कि उन्हें विश्व समाजवादी क्रान्ति का हिस्सा समझा जाए और मजदूर वर्ग के नेतृत्व में उन्हें निर्देशित व संचालित किया जाए। यह बात जो इतने दिनों तक महज सिद्धान्त के तौर पर चर्चित थी, रूसी क्रान्ति या नवम्बर समाजवादी क्रान्ति के बाद से विभिन्न मुल्कों के क्रान्तिकारियों ने उसे समुचित मान्यता देना शुरू किया और उसके यथार्थ तात्पर्य को समझा। दुनिया भर के देशों में आजादी आन्दोलनों के अगुआ दस्तों और समाजवादी चेतना से लैस लोग तत्काल इस सच्चाई को समझने के लिए बेताब हो उठे।

अब हम अपने देश की परिस्थितियों की तुलना तत्कालीन रूस के परिप्रेक्ष्य में करें। वहाँ बुर्जुआ वर्ग द्वारा सत्ता दखल करने के बाद अक्टूबर क्रान्ति के पहले तक या लेनिन द्वारा अप्रैल थीसिस पेश करते वक्त अर्थतंत्र में सामंतवाद का जो दबदबा था, यहाँ हमारे देश की अर्थव्यवस्था में सामंतवाद क्या उस पैमाने पर मौजूद है? आप स्वयं ही विचार कीजिए। मेरे विचार से, हमारे देश की कृषि अर्थव्यवस्था में जहाँ तक आर्थिक संबंध या उत्पादन संबंध से ताल्लुक है, सामंतवाद जैसा कुछ भी नहीं है। और सामंतवाद कहा जा सकने लायक अगर कुछ है भी तो वह है वर्तमान समाज के ऊपरी ढाँचे (सुपरस्ट्रक्चर) में मौजूद सामंती अवशेषों के साथ पुराने संस्कार, रीति रिवाज, रूचि, नीति-नैतिकता व मूल्यबोधों की मिलावट। आर्थिक आधार (बेस) बदलने के साथ-साथ ऊपरी ढाँचा भी बदल जाता है और इस वजह से पुराने समाज के ऊपरी ढाँचे के अवशेष नए समाज के ऊपरी ढाँचे पर थोड़े समय के लिए भी प्रभावशाली नहीं रहेंगे' –आधार व ऊपरी ढाँचे के बीच संबंध के बारे में जो इस ढंग से सोचते हैं वे कृपया गम्भीर सैद्धांतिक चर्चा में शरीक न हों तो ही बेहतर है। वे सिद्धांतों के सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण में भाग न ही लें तो अच्छा है। मेरे विचार से वे इस तरह की गम्भीर सैद्धांतिक चर्चाओं के काबिल नहीं हैं। वे इतना भी नहीं समझते कि आधार व ऊपरी ढाँचे के बीच संबंध क्या है? यह कहना ठीक है कि आधार के ऊपर ऊपरी ढाँचा गठित होता है। लेकिन क्या इसका मायने यह है कि आधार बदलता है तो ऊपरी ढाँचा भी बदल जाता है। यानी आधार के प्रत्येक परिवर्तन के तदनुरूप तत्काल अपने आप पूरी तरह ऊपरी ढाँचा भी बदल जाता है? यह नया ढाँचा जिस आधार पर विकसित होता है, अपने में पुराने समाज के ढांचे के असर को काफी समय तक लिए रहता है जिसके फलस्वरूप नए ढाँचे के भीतर ही गहरा अंतर्द्वन्द्व पैदा हो जाता है। आधार के बदलने के साथ ही पुराने समाज के ढाँचे की चीजें एकाएक गायब नहीं हो जाती।

इसके प्रतिकूल कोई भी चिन्तन अनैतिहासिक है और मैं नहीं समझता कि आधार व ऊपरी ढाँचे के बीच संबंध में ऐसी विचित्र धारणा का मार्क्सवाद में कोई स्थान है। मैं मार्क्सवाद का पण्डित हूँ ऐसा दावा नहीं करता। देश में आज बहुत सारे मार्क्सवादी पण्डित हैं, मैं नहीं सोचता कि मैं उनसे ज्यादा मार्क्सवाद समझता हूँ लेकिन जितना भी मार्क्सवाद मुझे आता है, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जो वे कहते हैं, उसका आधार व ऊपरी ढाँचे के बीच संबंध की सही समझ से कोई वास्ता नहीं है।

हमारे देश में जनवादी क्रान्ति के हिमायती दरअसल आर्थिक निश्चयतावाद का अभ्यास कर रहे हैं

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जो लोग सोचते हैं कि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के तमाम कार्यक्रम पूरे किए बिना हम लांघकर समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में प्रवेश नहीं कर सकते वे दरअसल आर्थिक निश्चयतावाद का अभ्यास कर रहे हैं। इस संदर्भ में मैं एक और प्रश्न पर चर्चा करना

(शेष पृष्ठ 6 पर)

क्रान्तिकारी कार्यकर्ता जनता के रोजमर्रे के सुख–दुःख के साथी बनें

शिवदास घोष स्मृति दिवस पर 7 अगस्त को कटक में हुई सभा में कॉमरेड रंजीत धर

5 अगस्त 1976 को कॉमरेड शिवदास घोष हमसे बिछुड़ गये थे। लेकिन वे आजीवन अपने संघर्ष के जरिए शोषित–पीड़ित मेहनतकशों के हाथों में उनकी मुक्ति का एकमात्र हथियार यह पार्टी थमा गये जिसके बिना शोषित जनता की मुक्ति सम्भव नहीं है।

मात्र 13 साल की उम्र में जब वे स्कूली छात्र थे, उसी समय आजादी की पुकार पर उन्होंने घर छोड़ दिया था। 1942 में कलकत्ता में वे पकड़े गये और उन्हें जेल में ठूंस दिया गया। जेल जीवन में ही कॉमरेड शिवदास घोष के चिन्तन में यह बात समझ में आई कि देश के लोग जिस मुक्ति के लिए आजादी आन्दोलन में जान कुर्बान कर रहे हैं, वह मुक्ति उन्हें नहीं मिल पायेगी। यह बात सही है कि आजादी आन्दोलन में भारत के बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी नर–नारी कूद पड़े थे, लेकिन जिस तरह आज देश दो वर्गों में बंटा हुआ है, उस समय भी दो वर्गों में बंटा हुआ था। एक तरफ मुट्ठीभर पूंजीपति थे और दूसरी तरफ करोड़ों शोषित लोग। आजादी आन्दोलन के समय भी भारत मजदूर–मालिक, अमीर–गरीब में बंटा हुआ था। भारत के राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग ने भी आजादी आन्दोलन का समर्थन किया था। लेकिन शोषित–पीड़ित आम लोगों और पूंजीपतियों का मकसद अलग–अलग था। भारत के पूंजीपति वर्ग–टाटा–बिड़लाओं का मकसद था अंग्रेजों को देश से भगा कर राजसत्ता अगर उनके हाथों में आ जाए तो करोड़ों करोड़ लोगों के बाजार इस भारत को, इस पूरे बाजार को हथिया कर वे मुनाफा लूट पायेंगे। लूट का विशाल बाजार उनके हाथ लग जाएगा। जबकि आजादी आन्दोलन में भारत के आम लोगों का मकसद था हर तरह के शोषण से मुक्ति, इन्सान की तरह जिन्दा रहने का हक। लेकिन चूंकि वर्ग–विभाजित समाज में पूंजीपति वर्ग के हाथों में आजादी आन्दोलन का नेतृत्व था, उस नेतृत्व और परिकल्पना को इस्तेमाल करने लायक उनकी अपनी पार्टी थी, इसलिए उन्होंने अपना मकसद पूरा कर लिया।

उधर, देश के करोड़ों करोड़ शोषित लोगों ने आजादी आन्दोलन में झुण्ड के झुण्ड में जान दी, लेकिन उनकी अपनी सही क्रान्तिकारी पार्टी न होने की वजह से वे आजादी आन्दोलन का फल अपने हाथों में नहीं ले पाये। यह तो लाजिमी तौर पर होना ही था। तब भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) थी और दूसरी पार्टियाँ भी थी जो मार्क्सवाद–लेनिनवाद का नाम लेकर चलती थी। इसके बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी इसलिए कुछ नहीं कर पाई कि पार्टी का नाम कम्युनिस्ट होने से भी दरअसल जिस सुनिर्दिष्ट संघर्ष से सही कम्युनिस्ट पार्टी गठित करनी होती है, उस संघर्ष से सीपीआई गठित नहीं हुई। इस संघर्ष की मर्मवस्तु है कम्युनिस्ट संस्कृति, उसकी संस्कृति। मैं जिस आदर्श के आधार पर शोषणमूलक पूंजीवादी समाज को ध्वस्त कर शोषणहीन समाज लाना चाहता हूँ, उस समाज का जो उन्नत आदर्श और संस्कृति है उसे सबसे पहले अपने जीवन में अपनाना होगा। नया समाज अपने आप नहीं बनेगा। उसका तो संचालक चाहिए, नेतृत्वकारी भूमिका चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी के नेता–कार्यकर्ताओं को ही तो वह भूमिका निभानी होगी।

रुचि–संस्कृतिगत पहलू से कोई आदमी अगर बुर्जुआ हो, लेकिन नारा कम्युनिज्म का देता हो, तो वह काम नहीं हो सकता। उसके लिए उसे पहले सांस्कृतिक पहलू से कम्युनिस्ट बनना होगा। यह जो सांस्कृतिक पहलू से खुद को बदलना है, संघर्ष के जरिए कम्युनिस्ट चरित्र हासिल करना है, इसका मतलब है व्यक्तिगत चाहत–प्राप्ति, कर्तव्यबोध, पति–पत्नी के सम्बन्ध, संतान–माता–पिता के सम्बन्ध, भाईचारे, भाई–बहन के सम्बन्ध, इन सब सम्बन्धों को पूंजीवादी समाज में पूंजीवादी पतनशील मूल्यबोधों के परिमण्डल से मुक्त करके कम्युनिस्ट मूल्यबोधों से संचालित करना होगा। यह कोई अकेले–अकेले संघर्ष के द्वारा नहीं कर सकता। एक सही कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर उसके संचालन में संघर्ष करके ही यह चीज हासिल कर सकता है। ऐसे में जो कम्युनिस्ट पार्टी सुनिर्दिष्ट पद्धति के अनुसरण और इस संस्कृति को अपनाने के संघर्ष के जरिए गठित होती है, सिर्फ वही सही कम्युनिस्ट पार्टी होती है। कॉमरेड शिवदास घोष ने दिखाया था कि सीपीआई और बाद में सीपीएम और सीपीआई–एमएल में से कोई भी कम्युनिस्ट

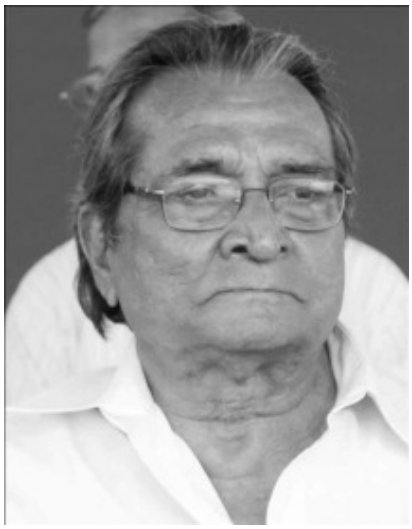

पार्टी गठन की इस सुनिर्दिष्ट पद्धति के अनुसरण और इस संस्कृति को अपनाने के संघर्ष के जरिए गठित नहीं हुई थी। अन्य कई गुणों और कुर्बानियों के बावजूद उन्होंने मार्क्सवाद को जीवन दर्शन के तौर पर ग्रहण नहीं किया था, मार्क्सवादी दृष्टिकोण से जिन्दगी के तमाम पहलुओं को संचालित करने का संघर्ष नहीं किया था, सर्वहारा रुचि–संस्कृति हासिल करने का मूल संघर्ष उन्होंने नहीं किया था। इस मायने में इनमें से कोई भी असल कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में गठित नहीं हो सकी।

स्टालिन ने इस देश की सीपीआई को कम्युनिस्ट पार्टी के तौर पर मान्यता दी थी। माओ त्से–तुंग ने मान्यता दी थी। जबकि कॉमरेड शिवदास घोष ने कहा था कि यह कम्युनिस्ट पार्टी नहीं है। सीपीआई वालों ने व्यंग करते हुए कहा था कि शिवदास घोष क्या स्टालिन से भी बड़े हैं! उन दिनों कितने कठिन संघर्ष के जरिए कॉमरेड शिवदास घोष को यह पार्टी बनानी पड़ी थी इसकी आज कल्पना भी नहीं कर पायेंगे। इतने वर्षों के संघर्ष के जरिए आज तो एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) की एक अच्छी जमीन तैयार हो गई है। किसके दम पर यह जमीन तैयार हुई है? किस आधार पर तैयार हुई है? किसी बुर्जुआ अखबार का प्रचार नही मिला, किसी पूंजीपति का पैसा नहीं था। कॉमरेड शिवदास घोष सही आदर्शगत दृढ़ विश्वास और संघर्ष पर खड़े हो कर इस पार्टी को खड़ा कर गये हैं। उन्होंने दिखाया कि सीपीआई नाकाम हो गई है क्योंकि उनके नेताओं ने कम्युनिस्ट चरित्र हासिल करने का संघर्ष नहीं किया। वे मन के पहलू से और पारिवारिक जीवन में बुर्जुआ हैं, केवल नारों से कम्युनिस्ट हैं। यह धोखा देकर कम्युनिस्ट नहीं बना जा सकता। कॉमरेड शिवदास घोष ने सही मायने में जिन्दगी के तमाम पहलुओं में कम्युनिज्म के आदर्श को लिया– संस्कृति को लिया। वे हमसे कहा करते थे कि पहले खुद कम्युनिस्ट बने, तभी कम्युनिज्म के आदर्श के आधार पर तुम कुछ तैयार कर पाओगे। वे आजीवन पार्टी में कम्युनिस्ट संस्कृति के आधार पर नेता–कार्यकर्ताओं का जीवन संचालन करने की कोशिश करते गये।

एक दिन जिस एसयूसीआई (सी) की स्थापना पश्चिम बंगाल के जयनगर नामक छोटे से ग्रामीण कस्बे में हुई थी, वह पार्टी आज देश के लगभग सभी प्रान्तों में जनसंघर्ष की धारा में उन्नत संस्कृति और नैतिकता का झण्डा फहराते हुए नये–पुराने, जवान–बुजुर्ग असंख्य लोगों कों को आकर्षित कर रही है। आज कहाँ है सीपीआई? आज कहाँ है सीपीएम? आदर्श के दम पर लोगों को अपनी तरफ खींचने की शक्ति अब उनमें नहीं है। 1969 में पश्चिम बंगाल में दूसरी संयुक्त मोर्चा सरकार जिसमें हम भी शामिल थे, उसमें सीपीएम की भूमिका देख कर कॉमरेड शिवदास घोष ने यह बात कही थी कि यह अगर अकेली सरकार बना ले तो थोड़े दिनों में ही इसका असली चरित्र उजागर हो जायेगा। 1977 में सरकार में आने के बाद 34 साल तक इसने पश्चिम बंगाल का कितना सर्वनाश किया, यह सर्वविदित है। अन्याय के खिलाफ लाठी–गोली खाकर आन्दोलन करने की जो मानसिकता पश्चिम बंगाल की जनता में थी, जो भारत के दूसरे प्रान्तों की जनता पर भी प्रभाव डालती थी, सीपीएम ने वह खत्म कर दी। देखिये, जो सीपीएम सरकारी सत्ता के नशे में चूर होकर अपने आपको बड़ी तीस मार खां समझती थी, चुनावों में हार कर आज उसकी कितनी दयनीय हालत हो गई है। सिर्फ मार्क्सवादी–लेनिनवादी पार्टी कहला कर सिर ऊंचा किये खड़ी है एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) और इस पार्टी की ताकत बढ़ती जा रही है। पूंजीपति वर्ग के अखबारों के प्रचार से एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) की यह ताकत नहीं बढ़ी है। किसी बुर्जुआ अखबार, किसी भी बुर्जुआ ताकत ने हमें प्रचार और समर्थन नहीं दिया। मान लीजिए यह जो कोलकाता में 5 अगस्त को इतनी बड़ी सभा हुई, किसी भी अखबार में उसका वैसा आभास नहीं मिला। पूरे भारत के हर प्रान्त में 5 अगस्त को कॉमरेड शिवदास घोष स्मृति दिवस मनाया गया है, बड़ी–बड़ी सभाएं हुई हैं, उनकी खबर बुर्जुआ अखबारों, टीवी में आपको नहीं मिलेंगी। बुर्जुआ अखबारों के प्रचार से नहीं, बल्कि जनसमर्थन से और सही नीति के आधार पर पार्टी आज यहाँ पहुँच गई है।

शुरूआत में ही मैंने जिस बात का जिक्र किया था, वह है हमारी जिन्दगी में, भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन में शिवदास घोष का स्थान कहाँ है, क्यों हम शिवदास घोष को अपना शिक्षक कहते हैं, क्यों हर साल हम उनका स्मृति दिवस मनाते हैं, यह हर नेता–कार्यकर्ता को समझना होगा। स्मृति दिवस पर हम खुद के बारे में विचार करते हैं कि हम शिवदास घोष को कितना समझ पाये हैं, हम अपने–अपने जीवन में उनके आदर्श को कितना ले पाये हैं। कितने सारे राजनैतिक–आर्थिक विषय कॉमरेड शिवदास घोष ने सिर्फ बताये ही नहीं, बलिक जनजीवन को केन्द्र करके जितने कुछ सोच–विचार से हम घिरे हुए हैं, उन सब विषयों के बारे में भी कॉमरेड शिवदास घोष की शिक्षाएं हैं। कॉमरेड–कॉमरेड के बीच सम्बन्ध कैसा होगा, क्रान्तिकारी जीवन में हर पल आचरण–व्यवहार कैसा होगा, जीवन शैली किस तरह की होगी, आनन्द–सुख की प्रकृति कैसी होगी, तर्क–वितर्क किस आधार पर संचालित होना चाहिए, उस तरह से वह संघर्ष हम आज भी चला रहे हैं कि नहीं।

ऐसी बात नहीं है कि कॉमरेड शिवदास घोष ने सिर्फ भारत के सर्वहारा क्रान्तिकारी आन्दोलन को लेकर और भारत की सरजमीं पर सही कम्युनिस्ट पार्टी के गठन को लेकर ही संघर्ष किया। जहाँ उन्होंने इस देश में जबरदस्त प्रतिकूल परिस्थितियों और समस्याओं का मुकाबला करते हुए एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) को बनाया, वहीं सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के प्रति दायित्वबद्ध रहते हुए यह चेतावनी भी दी थी कि विश्व साम्यवादी आन्दोलन में यांत्रिकता और नेतृत्व के अंधानुकरण के रास्ते, संशोधनवादी भटकाव आ सकता है। कॉमरेड शिवदास घोष कहा करते थे, 'मुझे अंधेपन से न मानें। मैं जो कहता हूँ, उस पर विचार करें। अगर सच लगे तो मानें। अगर सच न लगे तो मत मानें।' वे तर्क–वितर्क बहुत पसन्द करते थे। वे बहुत चाहते थे कि कार्यकर्ता विभिन्न सवालों पर तर्क–वितर्क करें। उसके द्वारा सच–झूठ का निर्णय करें। इसका मायने है द्वन्द्वात्मक पद्धति से युक्ति–तर्क के जरिये सत्य पर पहुँचना। सच हो तो सभी को उसे मानना होगा। किसी की बात की गलती दिखा सकता नहीं, फिर भी कहता हूँ कि मान नहीं सकता, यह नहीं चलेगा। फैसले से जो सच उभर कर आया है उसे मानते हुए उसे लागू करना होगा। जो एकदम ठीक लगा था, लेकिन प्रयोग करके देखा गया कि वह गलत है, उसी समय उसे बदल डालना होगा। बदल कर जो ठीक है उसे ग्रहण करना होगा। इसी तरह तो जो गलत है उसे छोड़ कर जो ठीक है उसे ही लोगों को ग्रहण करना होगा। कम्युनिस्ट सत्य के साधक होते हैं। सत्य को जानना, सच्चाई के रास्ते पर चलना, सच्चाई के रास्ते पर जीवन यापन करना, झूठ का सहारा न लेना –यही है कम्युनिस्टों का जीवन।

कॉमरेड शिवदास घोष का सारा जीवन भी रहा है –सत्य को जानना, सच्चाई के रास्ते पर चलना। सच्चाई के रास्ते पर चलने से उन्हें कोई भी परिस्थिति रोक नहीं पाई। जब इतिहास और विज्ञान ने कहा कि भारत में

(शेष पृष्ठ 4 पर)

कॉ. रंजीत धर का भाषण...

(पृष्ठ 3 का शेष)

असल कम्युनिस्ट पार्टी नहीं है और असल कम्युनिस्ट पार्टी के बिना जब क्रान्ति नहीं होगी, तो सबसे पहली जरूरत है सर्वहारा वर्ग की सही क्रान्तिकारी पार्टी बनाना। भारत जैसे विशाल देश में कुछ भी पास नहीं रहने की अवस्था में किस तरह यह पार्टी बनेगी, बस इसके अलावा और कुछ नहीं सोचा। सिर्फ यही कहा कि यही अगर इतिहास द्वारा निर्धारित रास्ता है, सत्य द्वारा निर्धारित रास्ता है, तो इसी रास्ते पर आगे बढ़ना होगा, इसी रास्ते पर चलना होगा। इसी रास्ते पर चलते हुए हम आज इस जगह आ पहुँचे हैं।

एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) पार्टी की स्थापना के समय ही कॉमरेड शिवदास घोष ने दिखाया था कि विश्व पूंजीवाद ने जिस बाजार संकट में पड़ कर प्रथम विश्व युद्ध किया था, उस विश्व पूंजीवाद ने उससे भी गहरे बाजार संकट में पड़ कर द्वितीय विश्व युद्ध छेड़ा था। नवस्वाधीन भारत भी एक पूंजीवादी राष्ट्र है और विश्व पूंजीवाद के प्रतिक्रियावादी दौर में, यानी साम्राज्यवाद के दौर में भारतीय पूंजीवाद के उभर कर आने की वजह से देश की जनता को यह पूंजीवाद कुछ भी अच्छा नहीं दे पायेगा। भारतीय पूंजीवाद भी पैदाइशी संकटग्रस्त है। इसके बाद बहुत साल गुजर चुके हैं, सिर्फ इतनी ही बात नहीं, बल्कि आज समाजवादी बाजार नाम की भी कोई चीज नहीं रही है, लगभग सारी दुनिया का बाजार ही पूंजीवादी बाजार के अधीन है। फिर भी पूंजीवादी बाजार का संकट बढ़ता ही जा रही है। आज पूरी दुनिया में पूंजीवाद गहरे संकट में फंसा हुआ है। चाहे इंग्लैण्ड या फ्रांस की बात करो, जर्मनी, जापान या अमेरिका की बात करो, महंगाई और बेरोजगारी सभी जगह जनता को त्रस्त कर रही है। सभी पूंजीवादी देशों में कल-कारखाने बंद होते जा रहे हैं। पूंजीपति कल-कारखानों में जो माल उत्पादन कराते हैं, वह लोगों की जरूरतें पूरी करने के लिए नहीं कराते हैं। पूंजीपति कल-कारखानों में माल उत्पादन कराते हैं बाजार में उन्हें बेच कर मुनाफा कमाने के लिए। इसका मतलब है उन्हें बाजार चाहिए। लोगों की खरीद शक्ति होती है बाजार। इसलिए पूंजीपतियों को बाजार चाहिए कहने का मतलब है उन्हें खरीद शक्ति रखने वाले लोग चाहिएं।

लेकिन आज दुनिया के देश-देश में, यहाँ तक कि हमारे देश में भी क्या हो रहा है? यही कि लोगों को जरूरत है, हर चीज का उनके यहाँ अभाव है, लेकिन खरीदने की क्षमता नहीं है। कारखाने बंद क्यों हो रहे हैं? क्योंकि उत्पादन की मांग नहीं है। क्योंकि लोगों की खरीदने की क्षमता नहीं है। समाज में लोगों को जरूरत है, फिर भी उत्पादित माल फालतू होता जा रहा है। क्योंकि शोषण करत-करते पूंजीपतियों ने ज्यादातर लोगों की खरीद शक्ति निचोड़ ली है। नतीजतन, बाजार नहीं है। बाजार नहीं है इसलिए उत्पादन बंद है। नतीजतन, नौकरियाँ नहीं हैं, बल्कि छंटनी हो रही है, जिसका मतलब है क्रय-क्षमता में और भी गिरावट। यह है संकट, यह है पूंजीवाद।

यह पूंजीवाद जब सामंती व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई लड़ कर पहले पहल दुनिया में आया था, तब यह प्रगतिशील था। यह पूंजीवाद तमाम पहलुओं से, नीति-नैतिकता, मूल्यबोधों के पहलुओं से समाज में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया था। सामंती समाज के अंधकार को चीर देने वाली बुर्जुआ रोशनी लाया था। मशीनी सभ्यता लाया था। लोकतांत्रिक मूल्यबोध लाया था। सामंती जीवन की नीति-नैतिकता और मूल्यबोध को इसने बदल डाला था। बुर्जुआ वर्ग यंत्र विज्ञान, तकनीकी की मदद से नई उत्पादन पद्धति लाया था। नतीजतन लोगों की जीवनयात्रा में काफी तरक्की हुई थी।

लेकिन बुर्जुआ वर्ग ने मालिक-मजदूर सम्बन्धों के आधार पर व्यक्ति मालिक के लाभ के मकसद से जिस अर्थव्यवस्था पर समाज को खड़ा किया था, वह अर्थव्यवस्था ही चूंकि शोषण पर कायम है, इसलिए कालान्तर में पूंजीवादी व्यवस्था भी समाज को आगे ले जाने की बजाय इसकी प्रगति में बाधक बन कर खड़ी हो गई। हर चीज के क्षेत्र में यही नियम है। बच्चा पैदा होता है, असीम शक्ति लेकर। धीरे-धीरे बड़ा होता जाता है, किशोर से जवान होता है, उस समय वह प्राणशक्ति से भरपूर होता है। वह नौजवान फिर प्रौढ़ हो जाता है, धीरे-धीरे उसकी शक्ति घटती जाती है, वह बूढ़ा हो जाता है, फिर वह शक्ति उसमें नहीं रहती है, उसके बाद वह दुनिया छोड़ कर चला जाता है। इस तरह सब कुछ आ रहा है और जा रहा है। आ रहा है नया, नई जरूरत से, नई समस्या को दूर करने के लिए, आकर समस्या को दूर कर रहा है। समस्या को दूर करके समाज को आगे बढ़ा रहा है। समाज को आगे बढ़ा कर वह विलुप्त हो जाता है। जो क्षमता थी, उसके मुताबिक काम करके उसकी भूमिका खत्म हो जाती है। इसके बाद नया नियम-कानून चाहिए। नये नियम-कानून के आधार पर, नये मूल्यबोध के आधार पर फिर समाज को आगे बढ़ा ले जाना होगा। यही है दुनिया का दस्तूर। पूंजीवादी समाज अब दुनिया को आगे नहीं ले जा सकता है। उसकी मौत की घंटी बज रही है। पूंजीवाद की मौत की घंटी पहले पहल 1914 में प्रथम विश्व युद्ध में सुनाई दी थी। उसके बाद 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध में सुनाई दी थी। अब आये दिन होने वाले छोटे-छोटे युद्धों में सुनाई दे रही है। युद्ध किस बात को लेकर है? युद्ध बाजार को लेकर है। प्रथम विश्व युद्ध से पहले जर्मनी, जापान व इटली औद्योगिक तौर पर काफी उन्नत हो उठे थे। तब उन्हें बाजार चाहिए था। लेकिन बाजार कहाँ मिले? पूरी दुनिया के बाजार पर तो साम्राज्यवादी ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगाल आदि ने कब्जा कर रखा था। नतीजतन, बाजार को लेकर जंग छिड़ गई। इसका मतलब है 1914 में ही बाजार संकट में घिर कर पूंजीवाद उस युद्ध में फंस गया था। आज हम इक्कीसवीं सदी में आ पहुँचे हैं। यह पूंजीवाद संकटग्रस्त हो गया है, इससे उबरने में कोई कला-कौशल काम नहीं दे रहा है। पूंजीवाद के द्वारा और आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। नतीजतन क्या हो रहा है? केवल इतना ही नहीं कि पूंजीवाद आर्थिक पहलू से ही संकट पैदा कर रहा है, बल्कि सांस्कृतिक पहलू से भी संकट पैदा कर रहा है। कहाँ है रवीन्द्रनाथ, कहाँ है शरतचन्द्र, कहाँ है फूले, कहाँ है प्रेमचन्द? जिस साहित्य ने एक दिन लोगों को नया जीवनबोध दिया था, नये मूल्यबोध दिये थे, आज कहाँ हैं वे सब? आज साहित्य के नाम पर केवल सेक्स और हिंसा परोसी जा रही है। यही एक चीज है। टीवी देखिये, सिनेमा देखिये –कहीं कोई मूल्यबोध नहीं है। नर-नारी का यौन जीवन ही एकमात्र विषय है उनका। नतीजतन क्या हो रहा है? प्रतिदिन देश में बलात्कार बढ़ रहे हैं। दस लोग मिल कर एक लड़की से सामूहिक बलात्कार करते हैं और उसका खून करके चले जाते हैं। आये दिन यही हो रहा है। यह कैसा भारत है? यह हम कहाँ आ पहुँचे हैं? कोई कुछ नहीं कह सकता है कि हरेक घर की संतान बड़ी होकर क्या बनेगी, वह चोर, डकैत, नहीं तो लम्पट, या वैगन ब्रेकर बनेगी। कोई किसी को मानता नहीं है। पति-पत्नी के सम्बन्ध, भाई-बहन के रिश्ते का जो माधुर्य था, वह अब नहीं रहा। सभी रिश्ते व्यापार के लेन-देन के रिश्ते हो गये हैं। कहीं प्यार-प्रेम, स्नेह, ममता, हमदर्दी नहीं रही है। पूंजीवाद आज सभी को अमानुष बनाता जा रहा है। पूंजीवाद सभी को जानवर बनाता जा रहा है। यही है पूरी दुनिया के पूंजीवाद का चेहरा। दुनिया भर में हाहाकार मचा हुआ है, नया समाज चाहिए, नये मूल्यबोध चाहिएं, नये इनसान चाहिएं।

भारत का हाल देख लीजिए। यह हम कहाँ आ पहुँचे हैं? बहुत ही धीर-गंभीर होकर, गहराई में जाकर यह सोचने की कोशिश कीजिए कि भारत का चेहरा क्या हो गया है। इस बार के लोकसभा चुनाव में क्या देखा? दो परिवर्तन हुए। एक है कांग्रेस का 10 साल का शासन खत्म हुआ। आये नरेन्द्र मोदी। कौन हैं नरेन्द्र मोदी? वे अल्पसंख्यकों की मौत के जिम्मेदार एक घृणित राजनीतिज्ञ हैं। यहाँ तक कि उनकी पार्टी के नेता वाजपेयी ने भी उनके साथ एक मंच से भाषण देना नहीं चाहा था। जिस नरेन्द्र मोदी की वजह से बिहार के नीतीश कुमार ने एनडीए छोड़ दिया था। नरेन्द्र मोदी ने गुजरात की एक ट्रेन में लगी आग की घटना को बहाना बना कर किस पाशविक ढंग से एक पर एक अनेक नीरीह मुसलमानों का कत्लेआम करवाया था। क्या वह इनसान है? जबकि पूंजीपतियों ने किस अद्भुत ढंग से प्रचार के जरिये ऐसे घृणित व्यक्ति को ही भारत का प्रधानमंत्री बनवा दिया। आप अगर यह मानते हैं कि जनसमर्थन से मोदी चुने गये हैं तो यह भूल है। एक मोह नरेन्द्र मोदी के नाम पर लगातार प्रचार के जरिये बुर्जुआ वर्ग ने तैयार कर दिया है। यहाँ कोई स्वेच्छा से भला वोट देता है क्या? जनमत तैयार कर दिया जाता है। प्रचार माध्यम–रेडियो, टीवी, अखबार सभी बुर्जुआ वर्ग के हाथों में हैं।

हमारे देश में तो 80 प्रतिशत लोग असंगठित और अचेत हैं। ऐसा नहीं है कि सारे मिल कर चर्चा-बहस करके उसके आधार पर अपनी राय बनाते हों। सभी अपनी-अपनी तरह के अलग-अलग हैं। ये जो अलग-अलग बिखरे हुए लोग हैं –उनकी वोट बुर्जुआ वर्ग पैसों में खरीद लेता है। चूंकि लोग तंगहाल हैं, दो जून का खाना भी नहीं जुटता है, इसलिए मतदान के समय येन-केन प्रकारेण पैसा खर्च करके पूंजीपति वर्ग लोगों की वोट खरीद लेता है। लोगों को ठग लेता है, बरगलाता है। वोट खरीद नहीं पाता तो गुण्डों को उन पर छोड़ देता है, लोगों को झूठे मुकदमों में फंसा देता है। लोग इस बात को पकड़ न पायें इसके लिए पूरे देश भर में पूंजीपतियों की पसन्दीदा पार्टी और व्यक्ति के पक्ष में अखबार, टीवी में चुनावी सर्वेक्षण के नाम पर व्यापक प्रचार देकर, एक हवा बनाई जाती है ताकि चुनावी नतीजे आने पर लोग कहें कि हाँ, यह तो होना ही था। यह जो नरेन्द्र मोदी सत्ता में आये, लोगों ने सोचा कि हाँ, ठीक ही आये हैं। सत्ताधारी बुर्जुआ वर्ग अत्यंत धूर्त और सबसे ज्यादा संगठित है। आप देखेंगे कि इण्डियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स जिस तरह सर्वभारतीय स्तर पर है, उसी तरह देश के सभी प्रान्तों में बुर्जुआ वर्ग कमेटियों में संगठित है। यह बात सही है कि उनके बीच अन्तर्द्वन्द्व है, लेकिन समग्र रूप से बुर्जुआ वर्ग स्वार्थ के आधार पर बुर्जुआ वर्ग का संगठन है जिसके जरिये बुर्जुआ वर्ग संगठित तरीके से काम करता है। लेकिन यह बुर्जुआ वर्ग देश के जिन करोड़ों करोड़ गरीब मेहनतकश लोगों, किसान-मजदूरों का शोषण करता है, वे जागरूक नहीं हैं, असंगठित हैं। इनमें अपना मतामत निर्णय करने लायक चेतना नहीं है। देश का मध्यम वर्ग –शिक्षित तबका जनमत तय करने के क्षेत्र में एक भूमिका निभाता है। लेकिन वे भी अलग-अलग हैं, भिन्न-भिन्न हैं, विछिन्न हैं, अपनी-अपनी अलग-अलग सोच लेकर चलते हैं। नतीजतन, सभी कुछ संगठित बुर्जुआ वर्ग के हाथों में रहने की वजह से वे प्रचार के जरिये पूरे देश भर में एक माहौल तैयार करके अपने पीछे जनता को लगा ले सकते हैं। इस बार जब चुनाव में भारी बहुमत लेकर मोदी सत्ता में आये, उस चुनाव से पहले कई दूसरे राज्यों में लोगों की राय जानने की कोशिश करके देखी गई तो निचले तबके के लोगों में मोदी के पक्ष में जिस तरह नतीजे आये हैं, वैसी जोरदार लहर कहीं नहीं मिली। लेकिन जब हो गया तब प्रचार के बल पर लोगों ने मान लिया कि वैसी ही लहर थी जैसी बताई गई थी।

संसदीय जनतंत्र तो ढकोसला है। बुर्जुआ वर्ग इसके पीछे से कन्ट्रोल करता है, उनकी पार्टी सामने होती है। उस पार्टी को वे सामने ले आते हैं, जनता में उसे लोकप्रिय बना देते हैं, उसके द्वारा वे देश पर शासन करते हैं। जब वह पार्टी जनसमर्थन खो देती है, जब लोग उस पार्टी से नाराज हो जाते हैं, तब बुर्जुआ वर्ग दूसरी एक पार्टी को ले आता है। एक भ्रम पैदा करके उस पार्टी से फिर कुछ दिन शासन चलाता है। इस तरह चलती रहती है दो दलीय संसदीय व्यवस्था। इसी की आड़ में प्रशासनिक फासीवाद हमारे देश में बहुत अर्सा पहले कायम हो चुका है। प्रशासन में लोकतंत्र नहीं है, न्याय-व्यवस्था में लोकतंत्र नहीं है, चुनाव में लोकतंत्र नहीं है, कहीं भी लोकतंत्र नहीं है। पुलिस में तो बिल्कुल नहीं है। कहीं भी आप लोकतंत्र नहीं देख पायेंगे। कमोबेश प्रशासनिक फासीवाद है। जब द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी -जापान-इटली फासिस्ट शक्ति की पराजय हुई, उसी समय कॉमरेड शिवदास घोष ने कहा था कि फासिस्ट सामरिक शक्ति की पराजय को फासीवाद की पराजय मानना भूल होगी। क्योंकि फासीवाद आज समस्त पूंजीवादी देशों की विशेषता बन चुकी है, फासीवादी बने बिना पूंजीवाद आज बच नहीं सकता है। फासीवाद कैसे आता है? फासीवाद पूंजीवाद के संकट से आता है। पूंजीपति जब संकटग्रस्त हो जाते हैं, तभी जनवादी अधिकार छीनने लगते हैं, सत्ता को हथिया लेते हैं। आज वे लोकतंत्र की बात नहीं करते। इसका मतलब सर्वात्मक फासीवाद नहीं है। सर्वात्मक फासीवाद का मतलब है एक समग्र प्रतिक्रान्ति –जब पूरे देश की जनता एक फासिस्ट शक्ति के आह्वान पर एकजुट हो जाती है। बहुत अर्सा पहले ही कॉमरेड शिवदास घोष ने दिखाया था कि सर्वात्मक फासीवाद भारत में कायम करना मुश्किल है। क्योंकि भारत विशाल देश है –इटली, जर्मनी नहीं है। यहाँ बहुत सारी भाषाएं हैं, बहुत सारे धर्म हैं, बहुत सारे आचार-विचारों में लोग अलग-अलग हैं। यहाँ स्माल स्केल इण्डस्ट्री और बिग इण्डस्ट्री का कम्पीटिशन है। क्षेत्रीय पूंजी है। उसके साथ एकाधिकारी पूंजी का द्वन्द्व है। इसी को केन्द्र करके नाना क्षेत्रीय पार्टियाँ हैं, राष्ट्रीय स्तर की बुर्जुआ पार्टियों से जिनके स्वार्थ का टकराव है, विरोध है। इन सब नाना तरह के द्वन्द्वों को मिटा कर भारत की

(शेष पृष्ठ 7 पर)

आंगनबाड़ी कर्मियों के सम्मेलन का आह्वान संयुक्त आंदोलन आज समय की जरूरत

आंगनवाड़ी कर्मियों के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कॉ. मैनेजर चौरसिया

मुरादाबाद (उ.प्र.) : आंगनबाड़ी कार्यकत्री एवं सहायिका वेलफेयर एसोसियेशन, मुरादाबाद मंडल का सम्मेलन आज समेकित बाल विकास योजना(आईसीडीएस) के 39 वें स्थापना दिवस पर अंबेडकर पार्क, मुरादाबाद में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता सोमवती शर्मा ने की तथा संचालन मिथिलेश चौधरी ने किया। सम्मेलन की शुरूआत में एसोसियशन की मुरादाबाद शहर परियोजना की अध्यक्ष हेमलता ठाकुर ने सभी पदाधिकारियों का स्वागत किया। इसके बाद ऋतु चौधरी, लिपि सिंह, तालिका सिंह व सोमवती ने क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये।

सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए मुख्य वक्ता कॉमरेड मैनेजर चौरसिया (अध्यक्ष दिल्ली आंगनबाड़ी एसोसियेशन एवं दिल्ली प्रदेश सचिव एआईयूटीयूसी) ने कहा कि आईसीडीएस योजना को शुरू हुए आज 39 वर्ष बीत गये लेकिन इसकी मूलभूत कर्ताधर्ता आंगनबाड़ी कर्मियों को उनका वाजिब हक सरकारी कर्मचारी का दर्जा आज तक नहीं मिला तथा न ही गरीब तबके की सेवा करने के नाते उन्हें जो सम्मान मिलना चाहिए उन्हें वह मिला। उन्होंने उ.प्र. की सरकार द्वारा अपने स्तर से पिछले 15 साल से आंगनबाड़ी कर्मियों को दिये जा रहे 200 रुपये मानदेय(ज्ञात हो कि 3000 रुपये केन्द्र तथा 200 रुपये उ.प्र. मानदेय देती है) को नाकाफी बताते हुए इसे तत्काल बढ़ाने की मांग की और आंगनबाड़ी कर्मियों से आंदोलन तेज करने का आह्वान किया।

कमलेश चाहल (राष्ट्रीय अध्यक्षा, आंगनबाड़ी एम्पलाईज फैडरेशन ऑफ इण्डिया) ने कहा कि एईएफआई के प्रयास से ही दिल्ली संसद पर तीन बड़ी रैलियां आयोजित की गई जिसके बाद मानदेय में दो बार वृद्धि हुई। पक्के आंगनबाड़ी केन्द्रों का निर्माण हुआ तथा ड्रेस आदि मिली, लेकिन आंगनबाड़ी कर्मियों को सरकारी कर्मचारी का दर्जा देने, पूरा वेतन तथा अन्य सुविधाएं देने की मूल मांग अभी भी अधूरी है जिसे पूरा कराने के लिए आंगनबाड़ी कर्मियों के विभिन्न संघों का संयुक्त आंदोलन आज समय की जरूरत है।

शशिबाला (प्रदेश महासचिव आंगनबाड़ी कार्यकर्ता एवं सहायिका वेलफेयर एसो. उ.प्र.) ने उ.प्र. सरकार की हॉट कुक्ड मील योजना को एनजीओ को सौंपने का विरोध किया। मजिस्ट्रेट की मार्फत एक मांगपत्र प्रधानमंत्री व उ.प्र. के मुख्यमंत्री के नाम भेजे गये। सम्मेलन में सर्वसम्मति से एक 21 सदस्यीय मंडल कमेटी बनाई गई जिसमें सोमवती शर्मा अध्यक्षा, हेमलता ठाकुर, कमलेश गैंगवार, सत्यबाला, संगीता मुक्ता, पूनम बिश्नोई उपाध्यक्ष, मिथिलेश चौधरी-सचिव, सुनीता अहलुवालिया तथा भूरी देवी सहायक सचिव तथा 12 सदस्य शामिल हैं।

युवाओं ने ज्वलंत मांगों को लेकर जिलाधिकारी कार्यालय पर दिया धरना

मुरादाबाद (उ.प्र.): बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, महिलाओं व बच्चों पर बढ़ते अपराध, टेलीविजन व इण्टरनेट व अन्य प्रचार माध्यमों से फैलाई जा रही अश्लीलता, नग्नता व अपसंस्कृति, शिक्षा व स्वास्थ्य के निजीकरण, व्यापारीकरण पुलिस उत्पीड़न के खिलाफ व सभी बेरोजगारों को रोजगार देने, बेरोजगारी भत्ता पुन: चालू करने, सभी के लिए मुफ्त शिक्षा–चिकित्सा की व्यवस्था करने आदि की मांगों को लेकर 23 सितम्बर को एआईडीवाईओ जिला कमेटी मुरादाबाद के नेतृत्व में छात्रों ने जिलाधिकारी, मुरादाबाद के कार्यालय के सामने एक जोरदार धरना प्रदर्शन किया और जिलाधिकारी मुरादाबाद, प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के नाम ज्ञापन भेजे। प्रदर्शनकारियों को संगठन के प्रदेश अध्यक्ष हरकिशोर सिंह जिलाध्यक्ष विनोद विग, जिला सचिव मुहम्मद गौरी सहित राजेन्द्र सिंह, नेत्र सिंह, प्रदीप बालिया, नवाब अली आदि ने सम्बोधित किया। धरने की कार्रवाई का संचालन संगठन के जिला सचिव मुहम्मद गौरी ने किया।

कोम्सोमोल का दो दिवसीय कैम्प

जौनपुर (उ.प्र.) : एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) पार्टी के किशोर-किशोरियों के संगठन कोम्सोमोल को निर्मित करने हेतु 1-2 अक्टूबर को श्री समरथ शिक्षण संस्थान खजुरन जौनपुर के प्रागंण में दो दिवसीय कैम्प लगाया गया। कैम्प में जौनपुर, प्रतापगढ़ व सुल्तानपुर जिले के सैकड़ों किशोर-किशोरियों ने हिस्सा लिया। शुरूआत में कैम्प की अध्यक्षता कर रहे कॉ. राम आसरे मौर्य द्वारा ध्वाजारोहण और मुख्यवक्ता के रूप में मौजूद एसयूसीआई(सी) के कोलकाता के जिला कमेटी के सदस्य कॉ. अंतनाभ चक्रवर्ती द्वारा शहीद वेदी पर माल्यार्पण किया गया। इसके बाद विभिन्न तरह के कार्यक्रम आयोजित किये गये जिनमें गीत-संगीत, खेलकूद, विज्ञान-प्रदर्शन, फिल्म-प्रदर्शन, व्यायाम और कोमसोमोल की पी टी-परेड शामिल थे।

शिविर को सम्बोधित करते हुए मुख्य वक्ता कॉ. अंजनाभ चक्रवर्ती ने कोम्सोमोल के ऐतिहासिक महत्व और इस मरणासन्न पूंजीवादी समाज में शिक्षा, संस्कृति व नीति-नैतिकता के गिरते स्तर से बच्चों को बचाने के लिए कोम्सोमोल संगठन खड़ा करने की जरूरत पर प्रकाश डाला।

शिविर में कॉ. बी.एन. सिंह (राज्य सचिव, एसयूसीआई (सी)), कॉ. सपन चटर्जी (वरिष्ठ सदस्य,एसयूसीआई (सी) राज्य कमेटी) ने भी अपनी बात रखी। संचालन कॉ. मिथिलेश कुमार मौर्य (राज्य उपाध्यक्ष, एआईडीएसओ राज्य कमेटी)ने किया। अंत में कॉ. शिवदास घोष पर रचित गान गाया गया और जोरदार नारे लगाये गये और फिर पूरी उर्जा व दृढ़संकल्प के साथ कोमसोमोल को हर जगह फैलाने का मन लेकर बच्चे अपने-अपने जिलों को लौट गये। शिविर में 17 बच्चों की तीन जिलों की एक संयोजन समिति बनाई गयी जिसके संयोजक कॉ. रामआसरे मौर्य व कॉ. मिथिलेश मौर्य को बनाया गया।

बिजली कटौती व दर वृद्धि के खिलाफ रोष प्रदर्शन

अमरोहा (उ.प्र.) : बेतहाशा बिजली कटौती व दर बढ़ोतरी के खिलाफ यहाँ 7 अक्तूबर को ऑल इण्डिया डीवाईओ के नेतृत्व में बिजली उपभोक्ताओं ने अधिशासी अभियंता, पश्चिमांचल बिजली वितरण खण्ड कार्यालय पर रोष प्रदर्शन किया गया। प्रदर्शनकारियों ने 24 घण्टे बिजली देने और बढ़ी हुई बिजली दरें वापस लेने की मांग की। प्रदर्शन का नेतृत्व संगठन के जिला सचिव नौबहार सिंह व उपाध्यक्ष नाजिर अली ने किया। की।

किसान खेतमजदूरों की विशाल रैली

क्योंझर (उड़ीसा): शराब पर रोक लगाने, जंगल भूमि का पट्टा किसानों को जारी करने जॉब कार्ड होल्डरों को काम देने, मनरेगा में मशीनों से काम लिया जाना बन्द करने, किसानों को सीड सब्सिडी देने, 3000 रुपये महीना बुढ़ापा पेन्शन देने की मांगों को लेकर 26 सितम्बर को क्योंझर कलैक्ट्रेट के सामने ऑल इण्डिया कृषक खेत मजदूर संगठन (एआईकेकेएमएस) द्वारा किसान खेत मजदूरों की एक विशाल रैली की गई जो स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के पास से होते हुए कलैक्ट्रेट पहुँच कर सभा में तब्दील हो गयी। सभा की अध्यक्षता जाने-माने किसान नेता कॉमरेड घनश्याम महंता ने की। एआईकेकेएमएस, उड़ीसा के राज्य सचिव और एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के राज्य कमेटी सदस्य कॉमरेड रघुनाथ दास सभा में मुख्य वक्ता थे। कॉ. वेणुधर सरदार, लक्ष्मीधर महंता, विजयानन्द मल्लिक और गंगाधर महंता को लेकर एक चार सदस्यीय शिष्टमण्डल कलैक्टर, क्योंझर उड़ीसा से मिला और 17 सूत्री मांगों का एक ज्ञापन सौंपा।

महान नवम्बर क्रान्ति ...

(पृष्ठ 2 का शेष)

चाहूँगा। तृतीय इण्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस में बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति को राष्ट्रीय स्वाधीनता संगाम की संज्ञा दी गई थी। इन स्वाधीनता संग्रामों को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति कह देने से कुछ लोग इसे लेनिनवाद से ही भटकाव मान बैठे हैं और चर्चा का विषय बनाए हुए हैं। सामाजिक क्रान्ति के इस दौर को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के तौर पर चिन्हित करने से ही एकदम लेनिनवाद से भटकना हो जाएगा, जो ऐसा सोचते हैं एवं मूल विषय छोड़कर ऐसे ही किसी नाजुक प्रसंग पर तर्क-वितर्क करने लग जाते हैं, उन्हें जानना चाहिए कि स्टालिन की कृति ''लेनिनवाद की समस्याएं'' एवं बाद में माओ त्से-तुंग के ढेर सारे लेखों में –अब के लिखे नहीं, उस समय के जब माओ त्से-तुंग को वे भी क्रान्तिकारी मानते थे–उनमें इस सामाजिक दौर को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति का दौर कहकर बार-बार उल्लेख किया गया है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति की संज्ञा न देकर राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम ही रहने देने का सुझाव तृतीय इण्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस में दिया गया था। इस वजह से कि ये संग्राम कुछ पहलुओं में बुर्जुआ क्रान्ति से भिन्न थे। उस युग में बुर्जुआ वर्ग क्रान्तिकारी था, इस युग में नहीं रहा। अत: इसमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्रामों पर अगर बुर्जुआ वर्ग का नेतृत्व कायम हो गया तो क्रान्ति को भारी क्षति उठानी होगी। लिहाजा राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों पर मजदूर वर्ग का नेतृत्व कायम करने की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया गया है। आज के युग की इन्हीं विशेषताओं को मद्देनजर रखते हुए ही तृतीय इण्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस में इन राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों को बुर्जुआ वर्ग के प्रभाव से मुक्त करने की सिफारिश की गई थी। लेकिन क्रान्ति का स्तर निर्धारित करने से संबंधित किसी भी चर्चा में हर कोई बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति या समाजवादी क्रान्ति जैसी शब्दावली का ही प्रयोग करता है। इससे रामायण या महाभारत कोई अशुद्ध नहीं हो जाती है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्रामों को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति कह देने से बुर्जुआ वर्ग पर कोई प्रगतिशीलता का ठप्पा नहीं लग जाता। कम से कम इस मान्यता के तहत तो उसे बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति नहीं ही कहते।

इस प्रसंग में आपको मैं चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के एक महत्वपूर्ण कथन की याद दिलाता हूँ। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी कह रही है, जब किसी प्रवृत्ति या भटकाव विशेष के खिलाफ संघर्ष छेड़ा जाता है तो कभी-कभी उस संघर्ष के भीतर ही कोई दूसरी प्रवृत्ति या भटकाव छुपा हो सकता है। मार्क्सवादी आन्दोलनों में यह लम्बे समय से होता आया है। तृतीय इण्टरनेशनल की द्वितीय कांग्रेस का उदाहरण ही ले लीजिए, एक उलझन को सुलझाने का कदम उठाया गया था लेकिन इसका हश्र देखिये!

यह सर्वविदित है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलुओं से सम्पूर्ण बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति का एक और सिर्फ एक ही चरण है। मान लीजिए यह बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में कुछ दूर तक चलती है। तत्पश्चात देखा जाता है कि वह आगे बढ़ ही नहीं रही, एक डग भी नहीं और बिना मजदूर वर्ग के नेतृत्व के बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति का शेष भाग पूरा कर पाना या उस दौर के क्रान्तिकारी कार्यक्रमों को भी सफलतापूर्वक जारी रख पाना अब किसी भी तरह से मुमकिन नहीं लग रहा। तब यह स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिए कि आपने नेतृत्व में बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के शेष भाग को अंजाम देने के लिए मजदूर वर्ग जो रणनीति (स्ट्रैटेजी) और रणकौशल (टैक्टिक्स) अख्तियार करेगा वह निश्चित ही बुर्जुआ वर्ग द्वारा बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के प्रारम्भिक काल में अपनाई गई रणनीति और रणकौशल से भिन्न होगी। लेकिन सामाजिक क्रान्ति के दौर के परिप्रेक्ष्य में यह सम्पूर्ण काल एक ही अखण्डित दौर है–बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति का दौर। लेकिन हम देखते हैं कि मार्क्सवादियों का एक तबका इस मामले में अजीब घालमेल कर रहा है। मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक पद्धति को पकड़ पाने में वे बुरी तरह से नाकाम रहे हैं। वे कहते हैं कि आखिर क्रान्ति के चरण को तो लांघा नहीं जा सकता और चूँकि उसे लांघा या फांदा नहीं जा सकता तो वे एक और चरण बीच में ठूँस देते हैं। उनके मतानुसार क्रान्ति अब दो चरणों, बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति में पूरी नहीं होगी। इन दोनों के बीच क्रान्ति का एक और चरण भी है जिसे वे जनता की जनवादी क्रान्ति (पीपल्स डैमोक्रेटिक रेवोल्यूशन) के नाम से पुकारते हैं।

उनकी यह भ्रांत धारणा दरअसल दो कारणों से पैदा हो रही है। पहला कारण है, राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति के अर्थ एवं राजनैतिक मर्म को ये समझ नहीं पाए। वे ठीक-ठीक पकड़ नहीं पाए कि किस संदर्भ में, किन परिस्थितियों में और किस मकसद से लेनिन ने इस भाषा का प्रयोग किया, क्यों उसकी जरूरत पड़ी, उसकी सीमाएँ क्या थीं? अगर कोई उसे ठीक तरह से न समझ पाए तो गड़बड़ी तो होगी ही। उनके साथ भी वहीं हुआ है। दूसरा कारण है, वे आर्थिक निश्चयतावाद के प्रभाव में हैं और मान रहे हैं कि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के कार्यक्रम पूरे हुए बिना, किसी भी तरह से समाजवादी क्रान्ति के चरण को हासिल नहीं किया जा सकता। वे सोचते हैं कि आजादी हासिल कर लेने के साथ बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति का एक दौर समाप्त हो गया जिसमें विदेशी साम्राज्यवाद या राजतंत्र के पुराने वर्ग को उखाड़ फेंककर एक नए स्वाधीन राष्ट्रीय राज्य की स्थापना की गई। उनके मतानुसार, बुर्जुआ वर्ग जिस मुल्क में जिस ढंग का हो पूरी तरह या आंशिक तौर पर क्रान्ति के खिलाफ चला गया। अत: एक वर्ग के तौर पर वह अब क्रान्ति की मित्र शक्ति नहीं रहा और अगर कहीं रहा भी हो, तो बड़े ढुलमुल रूप में बिना इस बात की गारण्टी के कि वह क्रान्ति में हिस्सा लेगा। परन्तु आर्थिक पहलू से तो क्रान्ति का स्तर अभी भी बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति ही है क्योंकि उसके सामंतवाद-विरोधी व साम्राज्यवाद-विरोधी कार्य एवं औद्योगिक क्रान्ति के कार्य अभी पूरे होने बाकी हैं। उस ठोस परिस्थिति में क्रान्ति का स्तर क्या होगा? उन्होंने स्वयं इसका समाधान भी खोज लिया है। उनका कहना है कि यह बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति के मध्यस्थ है। यही वह उद्गम है जहाँ से उनकी जनता की जनवादी क्रान्ति की भ्रान्ति उपज रही है। यानी वे लेनिन की उक्ति ''अर्थव्यवस्था व राजनीति के बीच हमेशा राजनीति को प्राथमिकता देनी होगी'' में निहित असल अभिप्राय को पकड़ने में बिल्कुल नाकाम रहे। वे नहीं समझ पाए कि प्रत्येक क्रान्ति का बुनियादी सवाल राजसत्ता दखल करने का सवाल है। स्टालिन ने इसे और भी साफ करके रखा है; कौन सा वर्ग किन-किन वर्गों के साथ वर्ग मैत्री कायम करते हुए किस वर्ग या किन वर्गों को राजसत्ता से उखाड़ फेंकेगा–हर क्रान्ति के सामने यही बुनियादी सवाल होता है।

अन्यथा इतिहास के हर छात्र को यह कैसे मालूम कि जब लेनिन नवम्बर समाजवादी क्रान्ति के लिए अप्रैल थीसिस का प्रारूप तैयार कर रहे थे, रूस में सामन्तवाद-विरोधी, साम्राज्यवाद-विरोधी सारे कार्यक्रम पूरे नहीं हुए थे। अगर कोई इससे अनजान हो या उसकी जानकारी केवल कुछ बातों तक ही सीमित हो जिसका स्टालिन ने दूसरों की गलतफहमियों का उत्तर देने के लिए 'लेनिनवाद की समस्याएं' नामक पुस्तक में जिक्र किया है; फिर भी अगर वे इन जवाबों में निहितार्थ को समझने में नाकाम रहे हों, यानी स्टालिन ने किन भ्रान्तियों के क्या खास जवाब दिए, भ्रांति कहाँ रही, क्यों हुई, किन ठोस ऐतिहासिक मुद्दों को केन्द्र कर उस तरह की गलतफहमी हुई, स्टालिन ने इन तमाम बातों का जवाब किस ढंग से दिया है–अगर वे उसे भली-भान्ति नहीं समझ पाएं तो ये कभी नहीं समझ पाएंगे कि क्योंकर नवम्बर क्रान्ति एक समाजवादी क्रान्ति थी हालांकि फरवरी क्रान्ति के बाद रूस में सामंतवाद-विरोधी, साम्राज्यवाद-विरोधी अनेक कार्यक्रम अपूर्ण ही रह गए थे। अब चूँकि नवम्बर समाजवादी क्रान्ति से पहले सामंतवाद-विरोधी व साम्राज्यवाद-विरोधी कार्य अधूरे पड़े हुए थे और चूँकि नवम्बर समाजवादी क्रान्ति ने इन सबको सम्पन्न करने का बीड़ा उठाया और कार्यक्रम घोषित किया तथा उस किस्म के नारे दिए तो कई लोग इसे भ्रान्तिवश यह समझ बैठे कि यह तो बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के अपूर्ण कार्यों को पूरा करने की क्रान्ति है, स्टालिन का उन्हें जवाब था–नहीं, नवम्बर क्रान्ति निश्चित तौर पर एक समाजवादी क्रान्ति थी उस हद तक और जहाँ तक कि बुनियादी राजनैतिक प्रश्न से ताल्लुक है, यानी यह बुर्जुआ वर्ग को सत्ताच्युत करने और सर्वहारा वर्ग द्वारा राजसत्ता पर कब्जा जमाने की क्रान्ति थी। इसमें आर्थिक क्षेत्र के बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के सामंतवाद-विरोधी, साम्राज्यवाद-विरोधी अपूर्ण कार्यों को व्युत्पादित या उपजात कार्यों (डैरिवेटिव टास्क्स एण्ड बाय प्रोडक्ट) के बतौर सर्वहारा वर्ग के सत्तासीन होने के बाद, समाजवादी क्रान्ति के मूल कार्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित करना था। इन कार्यों के पूरे होने तक बोल्शेविक पार्टी को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति की ये मांगें उठानी पड़ीं और समूचे कृषक वर्ग का समर्थन जुटाना पड़ा न केवल नवम्बर क्रान्ति की पूर्व अवधि में और उसके चलने के दौरान या उसके उपरान्त बल्कि 1919 में संविधान सभा के भंग हो जाने के बाद भी।

हमारे देश के मजदूरों, किसानों और नौजवानों के लिए, जो अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं, नवम्बर क्रान्ति के पाठ का यह पहलू बहुत ही महत्वपूर्ण है। मजदूर लड़ना चाहते हैं, किसान और नौजवान भी लड़ने को तैयार हैं लेकिन वे किसके खिलाफ लड़ना चाहते है? संघर्ष के कलाकौशल को निर्धारित करने का सवाल यानी दोस्त और दुश्मन की पहचान करने का सवाल क्रान्ति के लिए रणनीति तय करने के बुनियादी सवाल से ओतप्रोत रूप में जुड़ा हुआ है। अगर वे मानते है कि देश में क्रान्ति का स्तर जनता की जनवादी क्रान्ति है तब मंचीय व्याख्यानों से वे कैसे भी नारे क्यों न लगाएं, कितने ही जुझारू संघर्ष वे संचालित करें, यह तय है कि अपनी जनता की जनवादी क्रान्ति की वर्ग समन्वय संबंधी धारणा के मुताबिक ही वे अंदरूनी तौर पर गांवों के धनी किसानों के प्रति लगाव व सहानुभूति रखेंगे और उनके साथ एकता कायम करेंगे। फलस्वरूप, उनके द्वारा चलाए जाने वाले किसान आन्दोलन अनिवार्यत: धनी किसानों के प्रभाव और गिरफ्त में आ जाएंगे। भारतीय क्रान्ति को जनता की जनवादी क्रान्ति मानने से वे धनी किसानों के साथ किसी न किसी तरह मेलजोल बढ़ाने की ओर अग्रसर होंगे या फिर अटकलें लगाएंगे। लेकिन इससे कोई काम नहीं बनेगा। बल्कि कृषि अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद के संरक्षक धनी किसानों के खिलाफ गरीब, खेतिहर किसानों और मजदूरों का वर्ग संघर्ष कमजोर पड़ जाएगा और उनके हितों की बलि धनी किसानों के कदमों पर चढ़ा दी जाएगी। दूसरी तरफ जनता की जनवादी क्रान्ति के विचित्र सिद्धांत के आधार पर, कहीं न कहीं प्रगतिशील राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के कल्पित अस्तित्व को स्वीकार कर वे उन्हें समाज के उच्च वर्ग यानी पूँजीवाद के समर्थकों में तलाशने की कोशिश करेंगे और इस तरह पार्टी और उनके नेतागण निरपवाद उनके साथ नजदीकी संबंध स्थापित करने में लग जाएंगे। भले ही बाहर से ऐसा दिखाई न दे, लेकिन होगा यही। ऊपरी तौर पर, क्रान्ति के लिए पार्टी कार्यकर्ताओं ने कितनी ही कुर्बानियाँ क्यों न दी हों, लेकिन पार्टी में उनके नेतागण तो वैसा ही करेंगे जो कदाचित बलिदानी आम कार्यकर्ताओं की जानकारी के परे हो।

चूँकि जनता की जनवादी क्रान्ति में बुर्जुआ वर्ग की प्रगतिशील भूमिका को स्वीकारा गया है। इसकी वकालत करने वाले लोग पूंजीपति वर्ग को राजसत्ता से उखाड़ फेंकने के इच्छुक नहीं हैं। उनका लक्ष्य इजारेदारे पूंजीपतियों को राजसत्ता से उखाड़ फेंकने का है जिन्हें वे अलग वर्ग कहते हैं। इस विषय पर मैंने पहले भी कई बार कई मौकों पर विस्तार से चर्चा की है और दिखाया है कि इजारेदार पूँजीवाद का शासन दरअसल पूँजीवाद का शासन ही है और इजारेदार बुर्जुआ के प्राधान्य का मायने ही है एक वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग का ही प्राधान्य। पूँजीवाद के शासन के बिना इजारेदार पूँजी सत्ता नहीं संभाल सकती। मार्क्सवाद की कैसी भी जानकारी से इसके सिवा और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। और मेरे लिए जो कुछ भी थोड़ा-बहुत मार्क्सवाद मै समझता हूँ किसी और निष्कर्ष पर पहुँचना नामुमकिन है। हो सकता है कि किसी अन्य सिद्धांतकार के लिए किसी और निष्कर्ष पर पहुँचना नामुमकिन हो, लेकिन मेरे लिए नहीं है। यह मेरी समझ के बाहर है। क्योंकि इजारेदार पूँजीवाद, पूँजीवाद की ही एक निश्चित या खास अवस्था है, एक विकसित अवस्था का परिचायक है। एक बार जब इजारेदार पूँजीवाद को जन्म हो जाता है, तो बुर्जुआ शासन का मायने होता है इजारेदार पूँजी का शासन। ऐसा कहना कि देश में इजारेदार पूँजी का वर्चस्व है और उसी को उखाड़ फेंकना होगा लेकिन साथ ही साथ राष्ट्रीय बुर्जुआ को क्रान्ति की मित्र शक्ति मानने का असली मतलब होगा बुर्जुआ राजसत्ता के अस्तित्व को ही नकारना और क्रान्ति के जरिए राजसत्ता से बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंकने के बुनियादी काम से ही इन्कार करना।

हमारे देश में राज्य व्यवस्था पूँजीवादी है

किसी भी पहलू से देखिए देश की संरचना पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित है। थोक खाद्यान्न व्यापार के राष्ट्रीयकरण के नारे लगाए जा रहे हैं। खाद्यान्न के थोक व्यापार को राष्ट्रीयकृत करने के लिए सत्तारूढ़ दल कदम

(शेष पृष्ठ 7 पर)

कॉ. रंजीत धर का भाषण...

(पृष्ठ 4 का शेष)

सभी उपराष्ट्रीयताओं को एकजुट करके प्रतिक्रिया के पक्ष में व्यापक पैमाने पर ले आना बहुत मुश्किल है। लेकिन प्रशासनिक फासीवाद हमारे देश में कायम हो चुका है।

इस तरह मोदी के नेतृत्व में निरंकुश बहुमत से बीजेपी को बुर्जुआ वर्ग सत्ता में क्यों लाया? इसलिए कि अब भारत के पूंजीपति वर्ग के पास जितनी पूंजी है, उसकी तुलना में भारत का बाजार नहीं है, यानी लोगों की क्रय-क्षमता नहीं है जिसे उन्होंने शोषण करके संकुचित कर दिया है। यह बाजार उनके लिए पर्याप्त नहीं है। बहुत दिन हो चुके भारतीय एकाधिकारी पूंजीपति साम्राज्यवादी चरित्र अख्तियार कर चुके हैं। विदेशी बाजारों में और ज्यादा घुसना है तो विदेशी पूंजी को भी इस देश में और भी ज्यादा आने देना होगा। यह है लेन-देन की व्यवस्था। गठबंधन सरकार नहीं, अकेली एक पार्टी को पूर्ण बहुमत देकर नरेन्द्र मोदी को ले आये ताकि किसी तरह की कोई बाधा न हो। सिर्फ विदेशी पूंजी के लिए ही बाजार को खोलना ही नहीं, बल्कि आर्थिक क्षेत्र को और भी प्रसारित करना, देशी एकाधिकारी पूंजीपतियों के लिए सार्वजनिक क्षेत्र यानी राष्ट्रीय क्षेत्र को और भी खोल देना, राष्ट्रीयकृत उद्योगों को निजीकरण की ओर धकेल देना है–जिसका मायने है देशी एकाधिकारी पूंजीपतियों को इन्हे बेच देना और आम आदमी को मिलने वाली तमाम तरह की सब्सिडियों को एक-एक करके बंद कर देना भी है। नतीजतन, बुर्जुआ वर्ग नई सरकार ले आया और पूर्ण बहुमत से ले आया ताकि नरेन्द्र मोदी को यह सब करने में कोई दिक्कत न हो।

फिर यह भी याद रखें कि कांग्रेस हार गई है इसका मायने यह सोचना ठीक नहीं है कि कांग्रेस दोबारा फिर नहीं लौट आयेगी। पूंजीपति समर्थन देकर जरूरत पड़ने पर फिर कांग्रेस को ले आयेंगे। क्योंकि मोदी के पक्ष में जो हवा बनाई हुई थी, उसे इस बीच धक्का लगा है। आने के बाद से मोदी सरकार ने जो जो किया है, उससे लोगों को धक्का लगा है। जनता को राहत देना अब किसी भी पूंजीवादी सरकार के वश की बात नहीं है। वह चाहे मोदी हो, या कांग्रेस हो या कोई भी नेता क्यों न हो। पूंजीवाद जितने गहरे संकट में पड़ता जाएगा, उतना ही लोगों पर शोषण बढ़ता जायेगा। जितने दिन गुजरते जायेंगे, लोगों में विक्षोभ बढ़ता जायेगा, असन्तोष बढ़ता जायेगा। लोग आन्दोलन चाहेंगे। अभी भी देश के लोग आन्दोलनमुखी हो गये हैं। यहाँ पर हमारी पार्टी की स्थिति को समझना होगा। अगर विचार करें तो यह बात सही है कि हमारे देश में वोट कई तरह से पड़ते हैं। लेकिन पार्टी के प्रति जनता में एक ममत्व, एक प्यार पैदा हो गया है। इस पार्टी का कुछ अच्छा होने पर लोगों को खुशी होती है, हमारा नुकसान होने पर लोगों को दु:ख होता है। यह है हमारी पार्टी के पक्ष में एक सामाजिक समर्थन। यह ठीक है कि लोग खुल कर आगे नहीं आते हैं। इतनी आसानी से आगे नहीं आते है। लोग अपने परिवार, असंख्य बाधा-बंधनों में जकड़े हुए हैं। हम एक जुलूस निकालते हैं तो वे दूर से समर्थन करेंगे, लेकिन उसमें शामिल नहीं होंगे। वे चूंकि खुद को विभिन्न समस्याओं से घिरा हुआ पाते हैं, इसलिए कार्यक्रम में जा नहीं पाते हैं। लेकिन वे चाहते हैं, समर्थन करते हैं, खुश होते हैं। हमारे द्वारा चंदा मांगने पर दिल खोल कर चंदा देते हैं। इस जगह एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) पार्टी के प्रति जनमानस तैयार हो गया है, इस पार्टी के प्रति एक ममता, एक प्यार लोगों के मन में कहीं छिपा हुआ है। लेकिन आन्दोलन करने पर वे सड़क पर इसमें शामिल नहीं होंगे। क्योंकि वह शक्ति अभी तक हम हासिल नहीं कर पाये हैं। जिस दिन वह शक्ति हासिल कर लेंगे, उस दिन मां अपने बेटे को भेज देगी। यह आन्दोलन हमने बंगाल में देखा है। मां अपने बेटे को पुलिस की लाठी-गोली के सामने भेज देती है। यह माहौल तैयार होना चाहिए। यह माहौल तैयार करने की सम्भावना भी है अगर हम, हमारी पार्टी के नेता-कार्यकर्ता एक तरफ कॉमरेड शिवदास घोष की सीख के मुताबिक अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्नत सर्वहारा संस्कृति अपनाने का संघर्ष करें और दूसरी तरफ लोगों में रह कर लोगों के साथ घुलमिल कर लोगों को लामबंद करने की कोशिश करें। सिर्फ आन्दोलन की ही बात नहीं, खाना खाया है कि नहीं, आपके बेटे को क्या तकलीफ हो गई है, डाक्टर को दिखाया कि नहीं, बुखार उतरा कि नहीं या बढ़ गया है –यानी मैं उनके रोजमर्रे के सुख-दु:ख, अच्छे-बुरे की खबर लूँ, खबर रखूँ। क्रान्तिकारी कार्यकर्ता अगर ऐसा करते हुए लोगों के साथ घुलमिल कर रहें तो वह होगा मास लाइफ। सिर्फ कार्यक्रम, सिर्फ धनसंग्रह, सिर्फ अखबार बिक्री, क्या कोई आन्दोलन हो, किसी जुलूस में हो या किसी मीटिंग में हो, लोगों को जुटाने को छोड़ कर लोगों के साथ नहीं रहेंगे –ऐसा हो तो मास लाइफ नहीं होगा। ऐसा कार्यकर्ता बनना होगा कि लोगों की रोजमर्रे की समस्याओं को लेकर उनके पास जायें। इस तरह लोगों के अपने आदमी बन जायें। इस तरह लोगों का अपना आदमी हर क्रान्तिकारी कार्यकर्ता को बनना चाहिए। एक तरफ सांस्कृतिक तौर पर क्रान्तिकारी बनने का संघर्ष करना, पार्टी के वक्तव्य को जानना, स्टडी क्लास करना, स्टडी सर्कल आदि को नियमित करना, दूसरी तरफ लोगों के बीच रह कर लोगों के जीवन के साथ खुद को जोड़ देना है। इन दोनों के सम्मिश्रण से अमोघ शक्ति को पैदा कर सकते हैं। लेकिन वह निर्भर करता है हमारे कार्यकर्ताओं पर, उनकी पहलकदमी पर, उनके संघर्ष पर, उनकी चेतना पर। 5 अगस्त को यह संकल्प अगर हम लें तो ही कॉमरेड शिवदास घोष का सपना भारत की जनता की मुक्ति, को हम साकार कर सकते हैं। यही बात कह कर मैं अपना भाषण यहीं समाप्त करता हूँ।

महान नवम्बर क्रान्ति ...

(पृष्ठ 6 का शेष)

उठा रहा है, वे सफल हों न हों अलग बात है। खाद्यान्न पर लेवी (उगाही) लगाई जा रही है। कृषि उत्पादन को राष्ट्रीय पूँजीवादी बाजार की पण्य वस्तुओं (कामोडिटीज़) में तब्दील किया जा रहा ह और इससे सम्बन्धित हर चीज राष्ट्रीय पूँजीवादी बाजार के कायदे-कानून से संचालित है। कृषि अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति के दबाव को कैसे रोका जाए, इस पर विवाद चल रहा है। इन बातों को मद्देनजर रखते हुए अगर आप देश की परिस्थिति की जांच-पड़ताल करेंगे तो पाएंगे कि हमारी कृषि अर्थव्यवस्था पूरी तरह से पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों से संचालित है।*

एक आम आदमी भी समझ सकता है कि एक औद्योगिक श्रमिक, पूँजीवादी उत्पादन संबंध के आधार पर उत्पादन करता है। लेकिन हमारी कृषि अर्थव्यवस्था में भी पूँजीवाद प्रवेश कर गया है यह हम किन चरित्रगत विशेषताओं के आधार पर पहचानेंगे? लेनिन ने इस बारे में एकदम स्पष्ट मार्गदर्शन किया है। उन्होंने साफ-साफ दिखाया है कि कृषि अर्थव्यवस्था का चरित्र निर्धारित करने के लिए यह जानना कतई प्रासंगिक नहीं है कि वह पिछड़ी हुई है कि उन्नत या खेतीबाड़ी मशीनों के जरिए की जाती है अथवा वही पुराने दकियानूसी तौर-तरीके इस्तेमाल में लाए जाते हैं। खेती किसानी छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटी हुई जमीन पर होती है या बड़े पैमाने पर, इससे भी यह तय नहीं किया जा सकता कि कृषि अर्थव्यवस्था का चरित्र सामंती है अथवा पूँजीवादी। तब कृषि अर्थव्यवस्था का चरित्र निर्धारित करने का मापदण्ड क्या है? लेनिन कहते हैं कि कृषि उत्पादित माल को लेकर व्यापार-वाणिज्य किस नियम से हो रहा है यही उसका चरित्र निर्धारित करने का मापक हो सकता है। यानी देहातों में कृषि उत्पादित सामग्री का चरित्र क्या हो गया है और उस वस्तु का व्यापार-वाणिज्य के साथ संबंध किस किस्म का है। ये तथ्य ही मुख्यत: कृषि अर्थव्यवस्था के चरित्र को निर्धारित करेंगे कि वह सामंती है, पूँजीवादी है या समाजवादी।

हमारी कृषि अर्थव्यवस्था सामंतवादी न होकर पूँजीवादी है, फिर भी यंत्रीकृत नहीं है, यह एक अलग सवाल है। यह सवाल पूँजीवादी बाजार संकट के साथ जुड़ा हुआ है, उन कारणों से जुड़ा हुआ है जो निर्बाध औद्योगिक विकास के रास्ते में बाधक हैं और बेकारी की विकट समस्या से भी उसका सीधा संबंध है जिसके चलते देश गहरे संकट की चपेट में है। इस प्रसंग में, मुझे मालूम है कि लोग अजीबोगरीब तर्क दे रहे हैं। सुना है कुछ लोग ऐसे तर्क पेश कर रहे हैं कि चूँकि पूँजीपति वर्ग बेकारी की समस्या को बरकरार रखना चाहता है यानी जैसा कि मार्क्सवादी पुरातन साहित्य में वर्णित है पूँजीपति वर्ग इसलिए बेरोजगारों की 'रिजर्व फौज' तैयार रखता है ताकि मजदूरों के साथ बेहतर सौदेबाजी की जा सके। उन्हें हमारा यह तर्क कि भारतीय पूँजीपति वर्ग इस ऐतिहासिक दौर में इसलिए कृषि को यंत्रीकृत करने के पक्ष मे नहीं है क्योंकि इससे देहात में करोड़ों की तादाद में लोग बेकार पैदा हो जाएंगे जिससे राज्य के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो जाएगा–उन्हें वर्ग की प्रशंसा करने जैसा लगता है, मानो वे (पूँजीपति वर्ग) शायद बेकार पैदा करना नहीं चाहते। यह एकदम हास्यास्पद बात है। जो लोग इस ढंग से चीजों को ले रहे हैं और घालमेल कर रहे है मैं उनसे नम्र निवेदन करूँगा कि इतनी गंभीर चर्चा में पड़ने की नादानी न करें तो ही बेहतर है। उनको थोड़ा और जानना-समझना बाकी है। यह इतना आसान नहीं है। बुर्जुआ वर्ग बेहतर सौदेबाजी के लिए बेकारी की समस्या बनाए रखना चाहता है–पूरी सच्चाई को जानने के लिए केवल इतना ही जानना काफी नहीं होगा। क्या हिटलर ने जर्मनी में, भले ही अस्थायी तौर पर ही सही, अर्थव्यवस्था के सैन्यीकरण के जरिए बेरोजगारी की समस्या को हल नहीं कर लिया था। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। खैर, यहाँ वह मेरी चर्चा का विषय नहीं है। यहाँ समस्या ही कुछ और है। यह कहना एक बात है कि पूँजीपति निश्चय ही बेकारी की समस्या को कायम रखना चाहेंगे क्योंकि यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का आम नियम है। लेकिन यह समझना एकदम अलग बात है कि जब शहरों में ही बेकारी की समस्या ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि उसी को संभालने में शासक वर्ग को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ रहा है, तब यह जानते हुए भी कि देहातों में करोड़ों-करोड़ लोग एक ही झटके में बेकार हो जाएंगे और राज्य पर दबाव और भी ज्यादा बढ़ जाएगा, क्या शासक वर्ग कृषि के आधुनिकीकरण-यंत्रीकरण के लिए कदम उठाएगा–यह एक ऐसा जोखिम भरा काम होगा जिसे उठाने की जहमत वह हरगिज मोल नहीं लेगा। इस डर से वे कृषि का आधुनिकीकरण-यंत्रीकरण करने से कतरा रहे हैं और उसके स्थान पर खेती-किसानी के प्राचीन तौर तरीकों और 'हरित क्रान्ति' जैसे नुस्खे-टोटकों को तजवीज कर रहे हैं। वे इतना अधिक डरे हुए हैं कि कृषि-उत्पादन में भारी कमी के बावजूद कृषि के आधुनिकीकरण और यंत्रीकरण में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है। क्या इन सब बातों का मतलब यह है कि बुर्जुआ वर्ग बेकारी की समस्या को बनाए नहीं रखना चाहता? या इसके विपरीत, चूँकि बुर्जुआ वर्ग बेकारों की समस्या को जारी रखना चाहता है इसलिए देश में पहले से ही शहरों में मौजूद बेकारी की भयावह समस्या के अलावा देहात में भी, अपनी पहलकदमी से एक ही झटके में करोड़ों और बेकार पैदा करेगा, कल-कारखाने बन्द कर देगा ताकि संकट इतना गहरा हो जाए कि क्रान्ति की प्रक्रिया गति पकड़ ले। मैं वाकई समझ नहीं पाता कि इस ढंग से जो लोग बकवास करते हैं वे गंभीर राजनैतिक चर्चा में हिस्सा ही क्यों लेते हैं। क्या वे इन विषयों पर चर्चा एवं वाद-विवाद करने के काबिल हैं? इस किस्म के 'अकाट्य' मार्क्सवादी तर्क आजकल व्यक्त किए जा रहे हैं सब सुनने में आ रहा है। मैं उनसे अनुरोध करना चाहूँगा कि इस तरह के गहरे ज्ञान की चर्चा वे खूब बघारते रहें और यह साबित करने की कोशिश करते रहे कि हमें मार्क्सवाद की रत्ती भर भी समझ नहीं है, इससे हमारा कोई अहित नहीं होने वाला। हमें जनता पर पूरा भरोसा है। लोगों में सोचने-समझने की शक्ति है। वे स्वयं सोचेंगे-विचारेंगे, निरीक्षण-परीक्षण करेंगे, फैसला लेंगे और अंतत: सच्चाई को पकड़ कर रखने में कामयाब होंगे। लेकिन मैं बार-बार कहूँगा कि ये सब गड़बड़ियाँ इसलिए हो रही हैं कि वे (बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के समर्थक–सं.) नवम्बर क्रान्ति के सबक को ठीक ठीक पकड़ नहीं पाए। ...

(शेष अगले अंक में)

*मार्च 1970 में वीर भूमि जिला के सिउड़ी शहर में पं. बंगाल कृषक व खेत मजदूर फेडरेशन के 12वें सम्मेलन के प्रतिनिधि अधिवेशन में मुख्य अतिथि के रूप में भाषण देते हुए हमारे प्रिय दिवंगत नेता कॉ. शिवदास घोष ने भारतीय कृषि अर्थनीति के पूँजीवादी चरित्र को विभिन्न पहलुओं से विश्लेषित किया। विस्तृत चर्चा के दौरान उन्होंने बताया था, ''चन्द हाथों में देश की अधिकांश जमीन का केन्द्रीकरण, बहुसंख्य ग्रामीण जनसाधारण का सर्वहारा या अर्ध-सर्वहारा में रूपांतरण, जमीन का पूँजी विनियोग के साधन के तौर पर इस्तेमाल, मालिक-मजदूर संबंध के आधार पर कृषि उत्पादन का संचालन और सर्वोपरि, कृषि उपज का राष्ट्रीय पूँजीवादी बाजार के माल के तौर पर रूपान्तर–ये सब निर्णायक तौर पर सिद्ध करते हैं कि भारतीय कृषि अर्थनीति जबरदस्त रूप में पूँजीवादी चरित्र अपना चुकी है। बाद में यह भाषण ''किसान आन्दोलन के प्रसंग में'' नामक पुस्तिका में प्रकाशित हुआ।

R.N.I. No.- 43022/85
P.R.No.-DL(C)-01/1123/2012-2014
Posting at IPMBC on 7–8 and 22–23 Fortnightly, Date of Printing :20 Oct., 2014

केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर 5 दिसम्बर 2014 को संसद मार्ग पर आयोजित विरोध प्रदर्शन में लाखों की संख्या में शामिल हों

– ऑल इण्डिया यूटीयूसी

ऑल इण्डिया यूटीयूसी के महासचिव कॉमरेड शंकर साहा ने 17 अक्टूबर को जारी बयान में मोदी सरकार की श्रमिक-विरोधी धोखेपूर्ण व हमलावर कार्यवाही की भर्त्सना की। गत दिवस विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित एक सम्मेलन में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा श्रमिक हित के नाम पर की गई घोषणाओं पर टिप्पणी करते हुए ऑल इण्डिया यूटीयूसी के महासचिव कॉ. शंकर साहा ने कहा कि विशेषकर फैक्टरी एक्ट, औद्योगिक विवाद कानून और प्रशिक्षु एक्ट में खतरनाक संशोधन करने की घोषणा के बाद एक कदम और आगे बढ़ते हुए गत दिनों प्रधानमंत्री ने भाजपा सरकार द्वारा श्रम कानूनों के सरलीकरण करने की दलील की आड़ में श्रमिक वर्ग के पास अपने बचाव के लिए जो कुछ सुरक्षात्मक उपाय बचे हुए थे उन्हें छीनकर पूरी तरह निहत्था करने की ओर कदम बढ़ा दिये। मोदी की मंशा स्पष्ट रूप से सामने तब आई जब वह इन उपायों की घोषणा करने के उपरांत देशी-विदेशी एकाधिकारी घरानों को 'मेक इन इण्डिया' के लिए आमंत्रित करते हुए पुनः अपने आपको कारपोरेट मित्र के रूप में पेश कर रहे थे। बेहद संगठित साजिशपूर्ण नारे 'इंस्पेक्टर राज खात्म करने' का असली उद्देश्य प्रवर्तन तंत्र को एक खास तरीके से कमजोर करना है। यही प्रयास पिछले दो दशक से जारी है। अब श्रीमान मोदी अपनी इन घोषणाओं को अंतिम रूप देते हुए मालिकों (नियोक्ताओं) को पूर्ण आजादी प्रदान कर रहे हैं कि वे श्रम कानूनों को लागू भले ही न करें। न केवल श्रमिक आंदोलन की सर्वसम्मत मांग कि 3000 रुपये मासिक पेंशन की मांग को खारिज कर दिया अपितु पेंशन की वर्तमान राशि को अत्यधिक कम कर दिया। चूंकि पेंशन राशि तय करने के वर्तमान फार्मूले को बदल कर 12 महीने की अंतिम तनख्वाह से लेकर 60 महीने की तनख्वाह के औसत को आधार बना दिया गया है। आखिरकार, यह समझना वास्तव में ही बड़ा मुश्किल है कि जो घोषणाएं की गई हैं, उनसे सरकार व मालिकों द्वारा वित्त प्रदान किये गये श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा के तंत्र को कैसे सुनिश्चित किया जा सकेगा। इन हालातों में हम मजदूर वर्ग से *श्रमेव जयते* जैसे भ्रामक नारों के कुप्रभाव से मुक्त होकर इन तथाकथित कल्याणकारी योजनाओं के अंजामों को ठीक से समझने और उनके स्वयं के कठोर परिश्रम के द्वारा अर्जित श्रम अधिकारों की रक्षा करने और मजदूर-विरोधी कदमों का प्रतिरोध करने का आह्वान करते हैं जो अधिकतर इससे पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार ने देशी-विदेशी एकाधिकारी पूंजीपतियों के स्वार्थ में उठाये थे। हम यह भी आह्वान करते हैं कि राज्यों की राजधानियों में 5 दिसम्बर 2014 को संसद मार्ग पर आयोजित विरोध प्रदर्शनों में लाखों की संख्या में शामिल हों जो कि सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा आयोजित किये जा रहे हैं।

शहीद प्रीतिलता वादेदार स्मृति सभाएं

दिल्ली : भारतीय आजादी आंदोलन की प्रथम महिला शहीद प्रीतिलत वादेदार के शहादत दिवस पर एआईएमएसएस की ओर से बुराड़ी व सोनिया विहार में, एआईएमएसएस, एआईडीएसओ तथा एआईडीवाईओ की लोकल इकाई द्वारा गुलाबी बाग में स्मृति सभाओं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। एआईएमएसएस की दिल्ली राज्य सचिव कॉ. रितु कौशिक, अर्चना शर्मा, पुष्पा चमोली, आशा रानी व एआईडीएसओ के दिल्ली राज्य सविच प्रशांत कुमार तथा एआईडीवाईओ के क्षेत्रीय संयोजक तथा दिल्ली राज्य कार्यकारिणी सदस्य अमरजीत ने इस अवसर पर बात रखी। वक्ताओं ने बताया कि आज महंगाई, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा महिलाओं पर बढ़ रहे अपराधों के खिलाफ एक जुझारू आंदोलन संचालित करने के लिए प्रीतिलता जैसे शहीदों के जीवन संघर्ष से सीख लेना ही समय की मांग है।

सीरिया में अमेरिकी हवाई हमलों की एसयूसीआई(सी) ने की निन्दा

एसयूसीआई(कम्युनिस्ट) के महासचिव कॉमरेड प्रभाष घोष ने 22 अक्तूबर को जारी एक बयान में कहा,

इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एण्ड सीरिया (आई एस आई एस) आतंकवादियों को रोकने के बहाने सीरिया में अमेरिका द्वारा की जा रही बमबारी की हम कड़े शब्दों में निन्दा करते हैं। यह बात सही है कि आईएसआईएस के कार्यकलाप अत्यन्त घृणित और बर्बर हैं। वे विवेकहीन हिंसा कर रहे हैं, बेकसूर लोगों की हत्या कर रहे हैं, अनेक कैदियों के सर कलम कर रहे हैं, महिलाओं का अपहरण कर उनका शारीरिक शोषण कर रहे हैं। वे इन सब कुकृत्यों में लिप्त हैं। इन सब हिंसक कार्यकलापों के द्वारा वे डर और आतंक का माहौल तैयार कर इराक और आसपास के इलाकों में मध्ययुगीन धार्मिक कट्टरपंथी क्रूर शासन कायम करना चाहते हैं। लेकिन उनके इन हीन कार्यकलापों के बहाने अमेरिकी साम्राज्यवादियों की फौजी दखलअन्दाजी जायज नहीं ठहराई जा सकती है। क्योंकि इन साम्राज्यवादी ताकतों ने ही मध्यपूर्व और अन्य कई देशों में जो उनके आगे घुटने टेकने का राजी नहीं उन शासकों और शासन को उखाड़ फेंकने का मन्सूबा पूरा करने के लिए इन तमाम दहशतगर्द संगठनों को खुले तौर पर या छिपे तौर पैसा और हथियार देकर पैदा किया है और उनका लालन-पालन किया है। इन सब दहशतगर्द गुटों को इस्तेमाल करके साम्राज्यवादियों ने नाना देशों में जनता को संकीर्ण सोच के आधार पर आपसी फूट, मारकाट और यहाँ तक कि गृहयुद्ध में फंसा दिया है, उन्हें पंगु बना दिया है ताकि इन सब देशों की जनता साम्राज्यवादी साजिश के खिलाफ लामबंद होकर उठ खड़ी न हो सके। लेकिन अब उन्हीं के द्वारा सर्जित और पाले हुए दानव ने जब भस्मासुर बनकर, सृष्टा के खिलाफ ही हथियार उठा लिये हैं, तब साम्राज्यवादियों ने दहशतगर्दों को रोकने और काबू करने का बेतुका बहाना बना कर जिस किसी भी आजाद मुल्क में फौजी दखलअन्दाजी करने, यहाँ तक कि बमबारी करने का एकतरफा हक खुद ही ले लिया है। किसी देश की सम्प्रभुता का इस तरह खुल्लमखुल्ला उल्लंघन करना अन्तर्राष्ट्रीय कायदे-कानून के बिल्कुल खिलाफ है। पराये देश पर कब्जा और लूट जारी रखने और सुदृढ़ करने का घिनौना मन्सूबा पूरा करने के लिए अमेरिकी दस्युओं की यह भूमिका दरअसल भूमण्डलीय दहशतगर्दी के सिवा और कुछ नहीं है।

मध्यपूर्व और अरब दुनिया की जनता से हमारी अपील है कि वह एक तरफ साम्राज्यवादियों के खिलाफ जोरदार आन्दोलन गठित करे, दूसरी तरफ धार्मिक कट्टरपंथियों के विनाशकारी खतरे से सजग रह कर प्रगतिशील, जनवादी और धर्मनिरपेक्ष चिन्तन व मूल्यबोध के आधार पर संघर्ष करे और धार्मिक कट्टरपंथी ताकतों को परास्त करे।

दुनिया के युद्ध-विरोधी, शान्तिकामी जनता से हमारी अपील है कि साम्राज्यवाद, खासकर अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ एकजुट और सुसंगठित आन्दोलन गठित करने के लिए आगे आयें, ताकि दूसरे आजाद मुल्कों पर फौजी हमले बंद करने के लिए साम्राज्यवादियों को मजबूर किया जा सके।

एफ.डी.आई. के खिलाफ नागरिक कन्वेंशन

सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कॉ. अरूण कुमार सिंह

पटना (बिहार): प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) के खिलाफ 7 अक्तूबर को नागरिक मंच, पटना के तत्वावधान में स्थानीय आई.एम.ए. हॉल में नागरिक कन्वेंशन आयोजित किया गया जिसमें राजधानी के प्रबुद्ध नागरिकों की अच्छी-खासी उपस्थिति थी।

कन्वेंशन में लोगों का स्वागत करते हुए प्रो. आशीष रंजन ने विषय की महत्ता बतायी। बीमा कर्मचारी संघ ईस्ट सेंट्रल जोन के महासचिव श्रीकांत मिश्रा ने कहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी देश के आम-अवाम के खिलाफ देशी-विदेशी पूंजीपतियों को और फायदा पहुंचाने के लिए एफडीआई की वकालत कर रहे हैं।

कन्वेंशन को संबोधित करते हुए एसयूसीआई (कम्युनिस्ट) बिहार राज्य कमिटी के वरिष्ठ सदस्य अरूण कुमार सिंह ने कहा कि भारतीय पूंजीवाद अपने गहन संकट से उबरने की उम्मीद में दुनिया के बाजारों में अपनी पहुंच को आसान बनाने के लिए अपने यहां एफडीआई का समर्थन कर रहा है। भारत के पूंजीपति दुनिया के विभिन्न देशों में निवेश कर वहां की सस्ती श्रमशक्ति और संसाधनों का उपयोग कर साम्राज्यवादियों और विदेशी धनकुबेरों की तरह अपने मुनाफे को और बढ़ाना चाहते हैं। श्री सिंह ने कहा कि आज देश का जीडीपी ग्रोथ दरअसल जॉबलेस ग्रोथ है। देश के पूंजीपतियों का मुनाफा बढ़ रहा है जबकि देश के आम अवाम की जिन्दगी बद से बदतर हो रही है। उन्होंने शोषणमूलक पूंजीवादी व्यवस्था को क्रांति के जरिये उखाड़ फेंकने की जरूरत पर बल दिया।

कन्वेंशन में इस्तेयाक, प्रो. विनय कुमार कंठ, गजनफर नवाब, रासबिहारी चौधरी, बालगोविन्द सिंह, अनीश अंकुर, सतीश कुमार आदि ने अपना वक्तव्य रखा। कन्वेंशन का संचालन चार सदस्यीय अध्यक्ष मंडल ने किया, जिसमें के डी यादव, नन्द किशोर सिंह, रूपेश एवं इस्तेयाक शामिल थे। आयोजकों की ओर से तैयार किये गये आलेख को पार्थ सरकार ने प्रस्तुत किया।

शहीद-ए-आजम भगतसिंह को याद किया

दिल्ली बिंदापुर: शहीद-ए-आजम भगतसिंह की 107वीं जयंती के अवसर पर 27 सितम्बर को दिल्ली के बिंदापुर स्थित पार्क में एआईडीवाईओ की ओर से एक जनसभा व उद्धरण प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इसका संचालन संगठन की कार्यकारिणी सदस्य रीतु असवाल ने किया। उनके अलावा कॉ. हरीश त्यागी (एसयूसीआई(सी) राज्य कमेटी सदस्य), इन्द्रदेव (एआईडीवाईओ, दिल्ली के कोषाध्यक्ष), चंदन वर्मा (कार्यकारिणी सदस्य) तथा संजय कुमार आदि वक्ता थे।

सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर ऑफ इण्डिया (कम्युनिस्ट) की ओर से कॉ. सत्यवान द्वारा 3ए/38, डब्ल्यू.ई.ए., करोल बाग, नई दिल्ली-5 से संपादित व प्रकाशित तथा परम्परा प्रिंटिंग प्रेस, बी-70/83, इण्डस्ट्रियल एरिया, लॉरेंस रोड, दिल्ली-35 से मुद्रित, दूरभाष:011-25726631, Email: sarvaharadrishtikon@gmail.com; sarvaharadrishtikon@yahoo.com